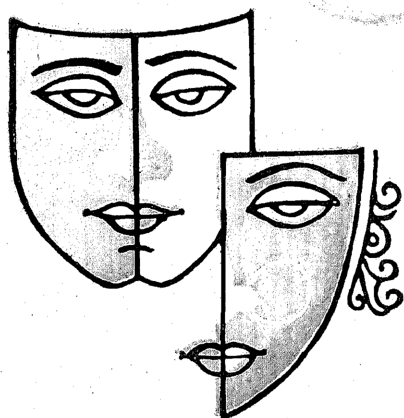
लक्ष्मीनारायण लाल और उनके नाटक

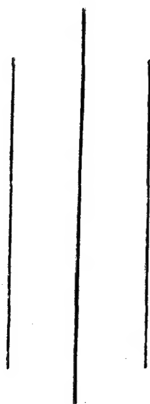


शकुन्तला यादव

लक्ष्मीनारायण लाल और उनके नाटक

डॉ. शकुन्तला यादव

लक्ष्मीनारायण लाल और उनके नाटक



डॉ शकुन्तला यादव

आशुतोष प्रकाशन, लुधियाना ।

प्रकाशक : मुकेश यादव
आशुतोष प्रकाशन,
90-सरकारी मकान,
फुव्वारा चौक, लुधियाना-141001

प्रथम संस्करण : 1992

मूल्य : : रूपये 75-00

आवरण : मुकेश यादव

मुद्रक : सुख जीवन किरण
अरुण-रश्मि प्रिंटरज़,
कैलाश सिनेमा के पीछे,
सिविल लाईन, लुधियाना-141001

Lakshminarain Lal Aur Unke Natak by
Dr. Shakuntla Yadav

बाबा के चरणों में

लक्ष्मीनारायण लाल और उनके नाटक

—डॉ शकुन्तला यादव

भूमिका

हिन्दी नाट्य-जगत में डॉक्टर लक्ष्मीनारायण लाल का नाम एक प्रयोगशील नाटककार के रूप में जाना माना जाता है। उनके व्यक्तित्व में नाट्य-अध्येता, रंगकर्मी, नाटककार और निर्देशक के अतिरिक्त एक कुशल समीक्षक की प्रतिभा सम्मिलित थी। उनका बहुआयामी व्यक्तित्व उनके कृतित्व में भी उसी तरह उभरा। जीवन के कटु-मधुर अनुभवों और सशक्त लेखन क्षमता ने उन्हें एक प्रयोगशील नाटककार के रूप में बहुत कम समय में ही प्रतिष्ठा दिलवा दी थी। इस पुस्तक में मैंने लगभग उनके सभी नाटकों का आलोचनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है। नाटकों के साथ छपीं उनकी भूमिकाएं तथा उनके आलोचनात्मक ग्रन्थों से भी मुझे

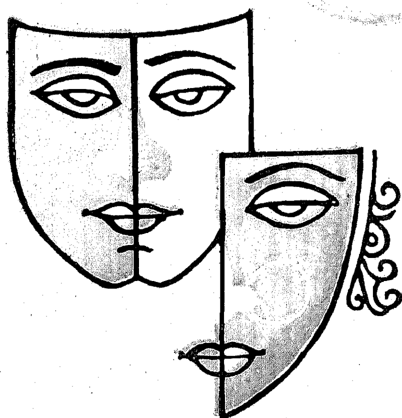
अपेक्षित सामग्री मिली है। उनके असामयिक निधन से हिन्दी नाटक को एक कमी न पूरी होने वाली क्षति हुई है। मेरी यह पुस्तक उनके प्रति एक सारस्वत श्रद्धांजलि है।

मैं अपने सभी सहयोगियों, छात्रों के प्रति धन्यवादी हूं जिन्होंने इस पुस्तक को पूरा करने में जाने अनजाने सहयोग किया है। इति।

शकुन्तला यादव
वरिष्ठ प्राध्यापिका
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
स.च.ध. सरकारी कॉलेज, लुधियाना।

जनवरी, 1992

लक्ष्मीनारायण लाल और उनके



नाटक

शकुन्तला यादव

लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक और सम्प्रेषण

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल ने अपने नाटकों में सम्प्रेषण की दृष्टि से कई प्रयोग किये हैं। यह प्रयोग नाट्य एवं रंग शिल्प दोनों ही धरातलों पर मिलते हैं। उनका हर नाटक सम्प्रेषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कथ्य, भाषा, चरित्र, रंगबोध आदि के स्तर पर उनमें स्पष्ट विविधता मिलती है।

'मादा कैक्टस' की भूमिका में नाटक और रंगमंच का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए डॉ. लाल मानते हैं कि,—"नाटक की सजीवता—रंग अनुष्ठान में है, अभिनेताओं में, रंगशिल्प में निर्देशन में अर्थात् उस सामूहिक मनोवृत्ति तथा परिवेश में, जब यह दृश्यगत हो········।" लाल को रंगमंच और नाट्य का व्यावहारिक ज्ञान एवं अनुभव है। इनके नाटकों में रंगचेतना स्पष्ट है। ध्वनि-प्रभाव, प्रकाश योजना, पात्रों के कार्य-व्यापार आदि के सहारे इन्होंने अपने नाटकों में सम्प्रेषण किया है तथापि अधिकांशतः सम्प्रेषण शब्दों द्वारा ही हुआ है।

इन्होंने सम्प्रेषण हेतु दोहरी मानसिक प्रक्रिया के वाहक (देखे और सुने) शब्दों का प्रयोग किया है। ये शब्द युगबोध के अनुरूप एवं कथ्य एवं पात्र

की परतों को सहज ही खोलते चले जाते हैं। पौराणिक मिथक पर आधारित **सूर्यमुख** एवं **कलंकी** तथा कुछ प्रतीकात्मक नाटकों में संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया है। उर्दू तथा अंग्रेजी के उन शब्दों का प्रयोग मिलता है जो सहज ग्राह्य एवं व्यवहार में प्रचलित हैं जैसे—अंजाम, माफ़िक, ख़तरनाक, बुनियादी, ख़बरदार, आइन्दा, महज, उम्दा, ग़लतफहमी, इतमीनान, चिराग़, बुजदिली, पैरवी इत्यादि। इसी प्रकार अंग्रेजी के शब्द जैसे—प्लीज, सेंसटिव आफिस, एम. एल. ए., क्रेडिट, कास्मैटिक, फिट, कमीशन, बाई इलैक्शन, इम्पोर्टेंट, जनरल इलैक्शन, टैक्स, फाइल, रिज़ाइन, चैकबुक, एक्सक्यूज़ मी, आई नो माई सैल्फ, दिस इज़ समथिंग हॉरिबल, फ्यूचर यहां तक कि उन के नाटकों के नाम जैसे—करफ्यू, मिस्टर अभिमन्यु आदि में भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग एक विशिष्ट प्रयोजन से हुआ है। इन सभी शब्दों के प्रयोगों के पीछे सम्प्रेषण की दृष्टि मुख्य है। ये वे शब्द हैं जो अपने आम प्रयोगों में प्रचलित होकर घिस चुके हैं और जो सहज ही आम पाठक और प्रेक्षक द्वारा समझे और ग्रहण किए जा सकते हैं। इन शब्दों के आम व्यवहार और प्रचलन से नाटक के सम्प्रेषण में सहजता बनी रहती है। इसी प्रकार **सुन्दररस** में बंगाली पात्र बंगला भाषा के शब्द बोलता है जो उसके बंगालीपन को सहज ही—सम्प्रेषित करते हैं। **अंधाकुआं** में राजी और उसकी नंद के मध्य का संवाद[1] दोनों के चरित्रों को अभिव्यक्त करता है जो इस प्रकार है :

'राजी : (बीच में ही) पानी में आग लगाना तुम्हें ही आता है, यह सब तुम्हीं को मुबारक हो।'

इसमें नन्दो एवं राजी के चरित्र स्वयं ही व्यंजित हो उठे हैं। प्रेक्षक, पाठक सहज ही नंदो एवं राजीकी भूमिकाओं को आसानी से अपने मन में उतार सकते हैं। **रक्तकमल** का डॉक्टर कमल के चरित्र पर इसी प्रकार प्रकाश डालता है। उनके दूसरे नाटक **मादा कैक्टस** में अरविन्द का नारी विषयक दृष्टिकोण भी उसके चरित्र को खोलता है। **मिस्टर अभिमन्यु** एवं **करफ्यू**

---

1. अंधाकुआं : प्रयाग, भारती भण्डार, प्रथम संस्करण, संवत् 2012 वि., पृष्ठ 23

में भी इसी प्रकार की युक्ति द्वारा चीज़ों को अभिव्यक्ति मिली है। **मिस्टर अभिमन्यु** में राजन, विमल और आत्मन के परस्पर संवादों से इन चरित्रों के प्रति सहज ही भाव तादात्म्य स्थापित हो जाता है। **करफ्यू** के गौतम-मीनाक्षी और कविता-संजय भी परस्पर, एक दूसरे के व्यक्तित्वों को खोलते हुए सहज ही पाठक और प्रेक्षक के मानस पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। कविता का कटाक्ष—'जी में आया पत्नी छोड़ दी, जैसे कोई भूमिका पसन्द न आए'[1]—उसके मन का क्षोभ तो प्रकट करता ही है साथ ही संजय के विचारों का परिचय भी देता है। **अंधाकुआं** ग्रामीण जीवन पर आधारित है। इसमें प्रयुक्त भाषा गांव के जीवन को उजागर करती है। जैसे, तनकी खरौटी, मखमल का भगवा आदि लोकोक्तियां ग्रामीण जीवन के परिवेश को व्यक्त करने के अतिरिक्त कई अर्थों में व्यंजित होती हैं।

पात्रों के नामों को भी ग्रामीण परिवेश की अनुरूपता से जोड़ा है जैसे,—भगौती को भगौतिया, सूका को सूकिया इत्यादि कहलाकर। इनके अतिरिक्त गाँवों में प्रचलित तरीक़ा—शब्दों को बिगाड़ कर बोलने का भी इसमें बख़ूबी मिलता है—जैसे, ताड़ी के ठीके, परसाद, बामन आदि में शब्द विकृति द्वारा ग्रामीण टच उभर आया है। ये सब प्रयोग नाट्य सम्प्रेषण में प्रेक्षक या पाठक की मानसिकता को नाट्य कथ्य से जोड़ने में सहायक होता है। इसमें अभिधार्थ को भी बिगाड़ कर जो प्रयोग किया गया है उससे अपेक्षित प्रभाव-सिद्धि हुई है। निःसन्देह शब्द शक्तियों का प्रयोग नाटककार की नाट्यशब्दों के प्रति चेतना को दर्शाता है।

मादा कैक्टस में सुधीर द्वारा—'हिरण एक चिड़िया है'—कहना भी अपनी व्यंजना में अरविंद के कथन के गलतपन को स्वत: घोषित कर देता है। जैसे हिरण चिड़िया नहीं जानवर है। उसी प्रकार अरविंद मीनाक्षी की बीमारी के लिए दोषी है, मीनाक्षी स्वयं नहीं। इस अभिधार्थ प्रयोग में असंगति होते हुए भी व्यंजनार्थ महत्वपूर्ण है। नाटकीय व्यंग्य उभरता है।

---

1. करफ्यू : दिल्ली, राजपाल एण्ड संस, पहला संस्करण, वर्ष 1972, पृष्ठ—27

इसी प्रकार एक उदाहरण इसी नाटक में चिड़िया पर गोली चलाने के प्रसंग में भी मिलता है।

मिस्टर अभिमन्यु में भी आत्मन का कथन—'रास्ता चलने से बनता है' —में दो-दो स्तरों पर इसका अर्थ सम्प्रेषित होता है। **मिस्टर अभिमन्यु** तथा **करफ्यू** नाटकों का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है और इसमें दो स्तरों पर अर्थ ध्वनित होता है एक, मिस्टर अभिमन्यु किसी आदमी का नाम हो सकता है लेकिन दूसरे अर्थ में वह चक्रव्यूह में घिरे अभिमन्यु को आज के आम आदमी को, जो अभिमन्यु की तरह ही सामाजिक, आर्थिक विषमताओं के व्यूह में फंसा हुआ लड़ रहा है। उसे भी इस व्यूह को तोड़ने का रास्ता नहीं मालूम। इसीलिए अभिमन्यु में मिस्टर लगाकर इस प्रतीक निर्देश को आधुनिक बना लिया है।

इसी प्रकार **करफ्यू** नाटक में 'करफ्यू' जहाँ एक ओर शासन द्वारा घोषित एक नियम है वहीं नैतिक वर्जनाओं के प्रति भी यह सम्प्रेषित होता है। लाल, इस प्रकार के शब्द प्रयोगों में सफल कहे जा सकते हैं। मनोभावों के वाहक के रूप में संवादों एवं नाट्य शब्दों का प्रयोग नाटककार की रंग-सजगता व्यक्त करता है तथापि कितनी जगह ऐसा भी लगता है कि जैसे नाटककार कुछ कहना चाहता है परन्तु समर्थ एवं सार्थक भाषा के अभाव में संवाद टूट-टूट जाते हैं। यह प्रवृत्ति, **करफ्यू** में अधिक है, जैसे—

संजय : सुनो तो......
मनीषा : सुनो तो......
संजय : तुम पहले......
मनीषा : तुम पहले......
संजय : मैं पूछ रहा था......
मनीषा : मैं पूछ रही थी......।

(**करफ्यू**, पृष्ठ—95)

यहां शब्दों की पुनरावृत्ति न तो नाट्यकथ्य को आगे बढ़ाती है और न ही कोई विशेष भाव इनसे सम्प्रेषित होता है।

'मौन' के प्रयोग में भी लक्ष्मी नारायण लाल सचेत हैं। इन्होंने अपने नाटकों में पात्रों की मन:स्थिति को व्यक्त करने, कभी नाट्य-तनाव को

गहराने, कहीं कौतूहल जगाने, कहीं भाव-प्रसंग बदलने आदि के लिए 'मौन' की योजना की है। लेकिन, मौन का प्रयोग कई नाटकों में सफल है तो कई जगह खटकता भी है। इन्होंने अपने नाटकों में प्रायः प्रसंग बदलने पर मौन की योजना की है जो बहुत स्वाभाविक लगती है। **करफ्यू** में कई जगह ऐसा प्रयोग मिलता है। **सूर्यमुख** में दुर्गपाल अपनी पत्नी एवं बच्चों की मृत्यु द्वारा चुकाई कीमत पर अपनी प्रशंसा अर्जुन से सुनकर व्यथित हो उठा है। यहां का मौन दुर्गपाल के भीतर के हाहाकार को जैसे ज़ोर-ज़ोर से व्यक्त कर रहा है। इसी प्रकार **दर्पन** नाटक में आया मौन उत्सुकता जगाने में सक्षम है। **दर्पन** नाटक के आरम्भ में पूर्वी को उसके पिता आवाज़ लगाते हैं, तब हरिपदम पूछता है :-

हरिपदम : पिता जी, आपको कुछ कहना है पूर्वी से ?
पिता जी : पर क्या यह मेरी बात मानेगी ?
हरिपदम : क्यों नहीं ? ऐसी भी क्या बात है ?
पिता जी : हूं।
(खामोशी खिच जाती है)

—**दर्पन** : पृष्ठ—44

यहां पर खिची खामोशी पूर्वी के प्रति कौतूहल जगाती है। पिता अपनी बेटी के प्रति अनिश्चित है किन्तु हरिपदम एकदम निश्चिन्त। इसी प्रकार, पात्रों की मनःस्थिति को कई जगह मौन द्वारा **मिस्टर अभिमन्यु** में उभारा गया है। राजन की पदोन्नति से खुश पिता जब राजन द्वारा त्याग-पत्र देने की बात सुनते हैं तो उन्हें धक्का-सा लगता है। राजन एवं उनके बीच एकाएक सन्नाटा तैरने लगता है। यहां पर अलग-अलग जीवन दृष्टियों वाले व्यक्तियों की टकराहट और उनके बीच समाप्त होता संवाद—खामोशी द्वारा व्यंजित हुआ है। **व्यक्तिगत** नाटक में 'वह', 'मैं' के कार्यालय में किसी फाईल के गुम होने के विषय में पूछती है। उन दोनों के बीच का मौन 'मैं' के अन्तर मन की परतों पर चोट करता है :-

मैं : चारों ओर बेईमानी·········करप्शन।
वह : ओ हो, अपनी बात करो।

(विराम)

—**व्यक्तिगत**, पृष्ठ-34

यहां का क्षणिक विराम 'मैं' के बेईमान होने को गहराता है। स्पष्ट है कि नाटककार मौन प्रयोग के प्रति कुछ ज्यादा ही सचेत है। लेकिन, यह मौन प्रयोग सर्वत्र सफल नहीं है। कई जगह अधिक प्रभाव नहीं डाल पाता। थोड़ा सा अन्तर मात्र ही नाट्य सम्प्रेषण में आ पाता है।

लाल, नाट्यभाषा के प्रति सजग हैं। रंगमंच में शब्द की भूमिका को भी पहचानते हैं। इसलिए उन्होंने नाटकीय शब्दों एवं हरकत की भाषा का प्रयोग किया है। यह भाषा नाट्य-सम्प्रेषण में सहायक होती है। बेतरतीब संवादों की योजना—व्यक्तिगत, अब्दुल्ला दीवाना, करफ्यू, मिस्टर अभिमन्यु, सूर्यमुख, आदि नाटकों में मिलती है। इस प्रकार के प्रयोग में उनका नाट्य कौशल उभरा है। विरोधी स्थितियों, मनोदशाओं को बेतरतीब संवाद द्वारा उनमें अन्तर्निहित भाव को गहराया जाता है। लाल ने, सहज शब्दों के प्रयोग द्वारा सम्प्रेषणीयता को लाने का प्रयास किया है। लेकिन **रातरानी** के कुंतल, निरंजन, जयदेव आदि सारे पात्र आरम्भ से लेकर एकसी भाषा का व्यवहार करते हैं। यह स्वाभाविक नहीं लगता। इस नाटक की भाषा पात्रों की भाषा न लग कर ओढी हुई या आरोपित सी लगती है।

लाल ने अपने नाटकों में कथ्य के अनुरूप भाषा का प्रयोग करने की पूरी कोशिश की है। हरकत की भाषा का प्रयोग शब्दों की रंग सार्थकता के सन्दर्भ में करते हैं जिससे रंगप्रेषण और भी सशक्त हो जाता है। बिम्बों एवं प्रतीकों द्वारा भाषा में चित्रात्मकता भी लाने की चेष्टा लाल के नाटकों में दिखाई देती है। **सूर्यमुख** में बिम्बों द्वारा परिवेश को उजागर किया है। इसमें प्रयुक्त कुछ उदाहरण इस प्रकार है, भेड़ियों का जंगल, मनुष्यों को पशु कहना आदि में द्वारिका तथा वहां के लोगों की स्थिति एवं मनोवृत्ति का परिचय मिलता है। **रक्तकमल** में कमल की कविता में बिम्बों द्वारा प्रभाव उभरा है। **अंधाकुआं** में भगौती की क्रूरता को 'कसाई का खूंटा' 'खूंटे में बांध कर मार रहे हो' आदि शब्द बिम्बात्मकता की सर्जना करते हैं इसी प्रकार प्रतीकों में भी।

अब्दुल्ला दीवाना में अब्दुल्ला आत्मा का प्रतीक है। जब-जब मनुष्य

आत्मा की आवाज़ को अनसुनी करता है, वह गलत काम करता है। इसी प्रकार करफ्यू, मिस्टर अभिमन्यू, एक सत्य हरिश्चन्द्र, नरसिंह कथा, दर्पन, मादा कैक्टस, रक्तकमल आदि शब्द अपने अभिधार्थ और व्यंग्यार्थ में सर्जनात्मक प्रतीकात्मकता लिए हुए हैं। **मादा कैक्टस** भी कलाकार मन का प्रतीक है। वनस्पति शास्त्र में प्रचलित एक धारणा के आधार पर उसे मानवीय स्तर पर प्रतीकार्थ दिया है।

शब्द-चेतना के साथ ही साथ लाल के नाटकों में पात्रसृष्टि भी महत्व-पूर्ण है। **मादा कैक्टस**, कलाकार मन का प्रतीक है। इसके नायक का विश्वास है कि मादा कैक्टस यदि नर कैक्टस से संयोजित होगी तो नर कैक्टस सूख जायेगा। किन्तु, द्वितीय अंक में इसके विपरीत मादाकैक्टस सूख जाती है। इससे प्रकट है कि अरविन्द के कारण उसकी पत्नी सुजाता तथा प्रेमिका मीनाक्षी दोनों दु:ख पा रही हैं। मीनाक्षी को टी. बी. हो गई है। वह भीतर ही भीतर निष्प्राण हो सूखती जा रही है। ये दोनों पात्र अपनी प्रतीकात्मकता में स्पष्ट हैं किन्तु अधिकांशत: इस नाटक के प्रतीक अस्पष्ट और दुरूह हैं। उन पात्रों का पूरा स्वरूप स्पष्ट नहीं होता है।

मिस्टर अभिमन्यु में महाभारत के अभिमन्यु के मिथक के माध्यम से आज के व्यक्ति या विसंगतियों एवं दुष्चक्रो में घिरा रूप उभारने की चेष्टा की गई है। इसमें आत्मन द्वारा एक स्वतन्त्र पात्र के रूप में अन्तरमन या आत्मा की अभिव्यक्ति करवाई गई है। यह चरित्र योजना प्रतीकात्मक होते हुए भी सफल कही जा सकती है। अभिमन्यु की त्रासदी को उभारने की भरसक कोशिश इसमें मिलती है।

करफ्यू में पात्र योजना द्वारा मन की वर्जनाओं को प्रतीकात्मक ढंग से व्यंजित करने की कोशिश की गई है। जैसे मनीषा, गौतम को बॉलरूम डांस सिखाती है और सांकेतिकता से वह उसे डाँस का कदम बढ़ाने के लिए ही न कह कर, नैतिक वर्जनाओं के बन्धनों को भी तोड़कर आगे कदम बढ़ाने के लिए कहती है। स्वयं को मजबूती से पकड़ने के लिए भी कहती है।

सूर्यमुख में प्रदुम्न का चरित्र एवं उसका द्वन्द्व कहीं-कहीं बड़ी सुन्दता से उभरा है, जैसे—

प्रदुम्न : मेरी कल्पना करो साम्ब, कितने दिनों तक मैं अपने मुख पर स्वयं मुखौटा बांधे जीवित था।..............और उस मुखौटे के भीतर जो कुछ घट रहा था............

साम्ब : घट रहा था ?

प्रदुम्न : द्वारिका में समुद्र बढ़ रहा था।

साम्ब : क्यों ?

प्रदुम्न : साम्ब तुम प्रश्न मत करो मुझसे।

साम्ब : तुम मुझे दण्ड ही तो दोगे।

प्रदुम्न : हर प्रेम एक दण्ड है।

लेकिन, बेनुरती और प्रदुम्न के मानसिक तनाव को नाटक में पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं मिली है।

व्यक्तिगत में पात्रों के नाम न देकर केवल 'मैं' और 'वह' की भूमिका द्वारा चरित्र सर्जना मिलती है। एम. के. रैना ने 'मैं' की भूमिका को इस प्रकार बाँधा—— "मैं का बहुआयामी बिम्ब और अनेक स्तरीय अर्थ और उसकी रूप व्यंजनाएं। इस 'मैं' की परिभाषा इकाई नहीं वरन् गुणात्मक प्रतिबिम्ब खींचती है। ऐसे 'मैं' को जो आजादी के बाद की हमारी राजनीति, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था और उनकी शक्तियों और प्रेरणाओं से पैदा हुआ है, उसे व्याख्यायित और रूपायित करना इतना सरल नहीं। वह 'मैं' मामूली पात्र नहीं है। वह सम्पूर्ण चरित्र है—स्वातंत्र्योत्तर भारतवर्ष के जीवन—नाटक का। यह बस, लेना जानता है, देना नहीं। लेना भी नहीं, वह, 'मैं' बस हड़पना जानता है। जीवी नहीं है मैं, मैं है उपजीवी। वह भोगता है, उपभोक्ता है, वह स्पना नहीं जानता। वह होता है। बीता नहीं। पहले जो एक सम्पूर्ण आईना था, पूरा दर्पन, वही अब टूटकर अनेक टुकड़ों में बिखर गया और वह 'मैं' उन अनेक टुकड़ों में दिखायी पड़ता है। 'मैं' नहीं, उस 'मैं' का प्रतिबिम्ब टूटे हुए दर्पन के हर टुकड़े में।[1] चाहे घर हो, समाज हो, यहां-वहां वह 'मैं' केवल

1. लाल लक्ष्मीनारायण : निर्देशक की बात, व्यक्तिगत : दिल्ली, राजपाल एण्ड संस, प्रथम संस्करण, 1962, पृष्ठ—7

प्रतीक है चोर, डाकू और हिंसक का। असत्य और विश्वासघात का। 'हड़प लो' —— 'मैं' का उद्देश्य है, जिस पर पूरा जीवन घूमता है। शोषण ही उसके लिए जीवन है और इसमें उसकी पत्नी 'वह' एक दिलचस्प शिकार है। 'मैं' 'वह' के एकदम विपरीत है, विपक्ष में नहीं। 'मैं' एक ऐसा कीड़ा है, जो सतत हड़पता है। इस प्रकृति ने उसे छोटा ही नहीं बनाया उसे हर स्तर पर सबसे बहिष्कृत भी कर दिया है। इस नाटक में लाल के पात्र प्रायः स्थिर लगते हैं। कहीं कहीं उनका द्वन्द्व नहीं उभरता, न ही भावों के उतार-चढ़ाव का पता चलता है।

अंधाकुआं का भगौती आरम्भ से गुस्सैल और चिड़चिड़ा नज़र आता है। वह अपनी पत्नी सूका से झगड़ता, उसे मारता-पीटता है। उस पर खूब गुस्सा करता है। चोट लगने पर बिस्तर पर पड़े-पड़े सूका के भूतपूर्व प्रेमी पर गुस्सा भी करता है। **रातरानी** के कुंतल, जयदेव, निरंजन आदि सभी पात्र सामान्य हैं। जयदेव अपनी पत्नी कुंतल को खुश करने के लिए 'माई डार्लिंग' कहता है किन्तु कुंतल को यह पसन्द नहीं आता, वह उसे टोकती है। तब, जयदेव ताना देता है कुंतल के प्रेम का असली हकदार तो उसका पहला मंगेतर निरंजन है। कुंतल हिन्दु नारी है, वह यह सहन नहीं कर पाती कि उसका पति उसके चरित्र पर सन्देह करे। वह दीवार से अपना सिर फोड़ लेने को कहती है। लेकिन, इन सब घटनाओं से पात्रों की पीड़ा या उनकी अन्तर्वेदना पूरी तरह नहीं व्यक्त हो पाई है। इस लिए उनके प्रति पूरी संवेदना नहीं जाग पाती। कुंतल का दुःख सतही बन कर रह जाता है। इसी प्रकार दर्पन की पूर्वी, जो संन्यासिनी है फिर से गृहस्थ जीवन में आना चाहती है किन्तु समाज का भय और इसके मन का द्वन्द्व उसे संत्रस्त किए रहता है। वह हरिपदम को हनीमून के लिए दार्जिलिंग जाने को मना करती है क्योंकि वह दार्जिलिंग मठ में रह चुकी है और वहां वह काफी लोकप्रिय है। उसे भय है कि वहां जाने पर उसको पहचान लिया जायगा। वह हरिपदम को बताती है कि उस की बहिन दर्पन, संन्यासिनी है। वह झूठ बोलती है उसे डर है कि असलियत खुलने पर उसे फिर संन्यासिनी बनना पड़ेगा और गृहस्थ-आश्रम अपनाने

के अपराध का प्रायश्चित भी करना पड़ेगा। वह गृहिणी बनना चाहती है, संन्यासिनी नहीं। लेकिन, इस स्थिति में भी पूर्वी का अन्तर्द्वन्द्व एवं उसका भय पूरी तरह उभर नहीं सका है। ऐसा लगता है जैसे लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने नाटकों में उद्देश्य को अधिक महत्त्व दिया है। उनका ध्यान पात्र-सृष्टि की ओर अधिक नहीं है। कथ्य और उद्देश्य के स्पष्टीकरण की तरफ ही रहा है। इनके अधिकांश पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व नहीं उभर सका है। यद्यपि इनके कथानकों में कई ऐसी नाट्यस्थितियां हैं जहां पात्र का अन्तर्द्वन्द्व रूप ले सकता था वहां पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व की सूचना मात्र ही मिल पाती है। **अबदुल्ला दीवाना** के युवक, पुरुष, युवती, डायरेक्टर आदि अपने वर्ग के प्रतिनिधि हैं। कोई ख़ास बात वे नहीं कर पाते। पात्रों की मनःस्थिति गहराने नहीं पाती।

लक्ष्मीनारायण लाल, नाट्य कथ्य एवं उद्देश्य के प्रति अधिक सचेत दिखाई देते हैं। उनके सभी नाटकों में कोई समस्या या प्रश्न है। मार्मिक नाट्यस्थितियों की योजना भी कर लेते हैं। नाटकीय तनाव को बनाए रखने के लिए घटनाओं का कुशल संयोजन एवं क्रमिक विकास भी उनके नाटकों की विशेषता है। कौतूहल की सृष्टि एवं संघर्ष भी इनके नाटको में पर्याप्त है। सभी नाटकों में रंगमंच की यथार्थवादी शैली के अनुरूप अंकों एवं दृश्यों का कलात्मक विभाजन भी मिलता है।

प्रायः इनके नाटकों का कथ्य अपने शीर्षक की प्रतीकात्मकता से जुड़ा हुआ है। जैसे, मादा कैक्टस, मिस्टर अभिमन्यु, करफ्यू, रातरानी आदि। प्राय: सैक्स एवं प्रेम को भी इन्होंने अपने नाटकों की विषय वस्तु का आधार बनाया है। जैसे—करफ्यू, सूर्यमुख में। सूर्यमुख में सौतेले मां-बेटे के बीच यौन-संबंधों को लेकर तनाव पूर्ण नाट्य स्थितियां मिलती हैं। रक्त-कमल, रातरानी, अंधाकुआं, मादाकैक्टस व्यक्तिगत आदि नाटकों में भी पति-पत्नी और प्रेमिका या प्रेमी को लेकर त्रिकोण खींचे गये हैं। ये त्रिकोण नये-नये कोणों से कथ्य में नवीनता की पुष्टि करते हैं। किन्तु, संघर्ष एवं नाट्य तनाव पूरी तरह नहीं उभर पाता। **मिस्टर अभिमन्यु** की कथा संवेदना की मार्मिक अनुभूति उपजाने में पूरी तरह सफल नहीं होती लेकिन

अभिमन्यु की मिथकी प्रतीकात्मक को पूरी तरह ढालने की चेष्टा, इस नाटक में मिलती है। रंग सम्प्रेषण में यह बखूबी नाट्यानुभूति जगाती है। **दर्पण** के कथ्य की मार्मिकता पूर्वी के अन्तर्द्वन्द्व में समायी है। वह आरम्भ से ही कथ्य की संवेदना को थामे हुए हैं। उसकी हरकतें उसके द्वन्द्व को उभारती हैं किन्तु इतनी मार्मिक नाटयस्थिति को पूरी तरह भावप्रवण सम्प्रेषणीयता नहीं मिल पाई है। **अब्दुल्ला दीवाना** जहां समकालीन संवेदना से जुड़ा हुआ है, आम आदमी की आत्मा को व्यक्त करता है लेकिन कोई स्पष्ट प्रभाव या उद्देश्य इससे नहीं निकल पाता।

कहीं-कहीं इनके नाटकों में, गम्भीर स्थितियों के बीच आए जुमले या अनावश्यक फिकरे, नाटकीय तनाव को पूरी तरह गहराने नहीं देते। ये जुमले बड़े चुटीले होते हुए भी मूल कथ्य एवं प्रसंग के साथ मेल न खाने के कारण निरर्थक से दीखने लगते हैं। ऐसा लगता है कि नाटककार को इन लोकप्रिय फिकरों के प्रति अनावश्यक।सा मोह है जिसका संवरण वह नहीं कर पाते और यथा-तथा उनका प्रयोग वे नाटकों में कर देते हैं।

लाल के नाटकों के प्रतीक एवं मिथ नाट्य-कथ्य की संवेदना के साथ पूरी तरह जुड़े हुए हैं। नाटय वस्तु का अंग बन कर आए हैं। बाद के नाटकों में लाल ने रंग-स्थितियों के माध्यम से बहुत कुछ सम्प्रेषित करने का प्रयास किया है। इन नाटकों में जैसे **अब्दुल्ला दीवाना** में ड्रिल का दृश्य (पृष्ठ 52-53), पूरी व्यवस्था पर चोट करता है। जज का पीठ खुजलाने के लिए महिला को कहना (पृष्ठ-55) उसकी मानसिक विकृति को प्रकट करता है। यहां लाल ने पात्रों की हरकतों द्वारा नाट्य वस्तु को सम्प्रेषित करने की टैकनीक अपनाई है। शब्दों के साथ-साथ रंग-गतियों, रंग-व्यापारों, मुद्राओं और रंग-चेष्टाओं के प्रति सचेतनता ने उनके रंग-शिल्प को और नाट्य लेखन को एक नया आयाम दिया है। लाल ने शब्दों के साथ-साथ रंग-व्यापारों के समुचित प्रयोग द्वारा नाटक की भाव-वस्तु को सम्प्रेषित किया है।

लक्ष्मी नारायण लाल ने पात्रों के कार्य-व्यापारों और शारीरिक क्रियाओं को रंग-संकेतों द्वारा व्यक्त किया है। उन्होंने अपने नाटकों में

पात्रों की मुद्राओं, चेष्टाओं और रंग-व्यापारों के विषय में पर्याप्त निर्देश दिए हैं। कहीं-कहीं उनके द्वारा दिए गए निर्देश भावाभिव्यक्ति में सहायक हो कर भी आए हैं। जैसे, **अंधाकुआं** की शुरुआत में भगौती का मंच पर आकर 'पसीना पोंछना' यह सम्प्रेषित करता है कि उसने अपनी पूरी शक्ति से अपनी बीबी को पीटा है। यदि इस कार्य-व्यापार को पहले की ध्वनियों से जोड़ कर देखा जाए तो पुरुष द्वारा बेरहमी से मारने और नारी के उस मार को झेलने की पूरी व्यंजना उभर आती है। भगौती द्वारा पसीना पोंछने की छोटी सी हरकत का यह छोटा-सा रंग-संकेत नेपथ्य की भयानक हरकत की ओर संकेत करते हैं और उसकी क्रूरता को पूरी भयानकता से उभारते हैं। इसी प्रकार **दर्पन** में थकी सी दीखने वाली पूर्वी का आकर एक बार सूने बरामदे में घूमना, सहसा रूक कर खड़ा होना और बेहद थक कर कुर्सी पर बैठ जाना (पृष्ठ-3) उसके मन की उद्विग्नता, बेचैनी और अनिश्चय की स्थिति को प्रकट करता है। यह रंगनिर्देश नाटक के अन्त तक कथ्य की मूल संवेदना तथा पात्र की मनःस्थिति का वाहक बना रहता है। इसी प्रकार **मिस्टर अभिमन्यु** में राजन द्वारा मूर्ति को निहारना (पृष्ठ-2) मानो अपने ही टूटे बिखरेपन से साक्षात्कार की एक कोशिश बन जाता है कि लक्ष्मीनारायण लाल अपने नाटकों में रंग-सम्प्रेशण की सजगता लिए हैं और यह प्रवृत्ति उनके प्रत्येक नाटक में शुरू से अन्त तक मिलती है।

रंग संयंत्रों एवं **उपकरणों** का समुचित प्रयोग भी नाट्यकार ने अपने नाटकों में किया है। **प्रकाश योजना** का प्रयोग लाल ने अपने नाटकों में काल व्यतीत होने की सूचना देने के लिए ही प्रायः किया है। इससे इनके नाटक, मंचन में सुविधाजनक हो सके हैं। वैसे भी यथार्थवादी शैली पर लिखे गए इनके नाटक एक ही दृश्यबंध पर खेले जा सकते हैं। एक प्रसंग या विषय के खत्म होने और दूसरे के आरम्भ होने से पहले जहां दृश्य-परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है, वहाँ प्रकाश योजना द्वारा परिवर्तन करवाया गया है। दृश्य-परिवर्तन की सूचना में भी प्रकाश योजना का प्रयोग अधिक किया गया है।

ध्वनि प्रभावों का प्रयोग इनके नाटकों में कहीं-कहीं बड़ा कलात्मक हो पाया है लाल ने ध्वनि-प्रभावों का प्रयोग-वातावरण निर्माण करने तथा प्रेक्षकों की उत्सुकता बढ़ाने के लिए किया है। साथ ही इसके द्वारा वह स्थितिजन्य तनाव को गहराते हैं तथा पात्र की मनःस्थिति को प्रभावपूर्ण ढंग से सम्प्रेषित भी करते हैं। लाल की ध्वनिसचेतता इससे भी स्पष्ट होती है कि उन्होंने अपने पहले नाटक **अंधाकुआं** में भी वातावरण निर्माण में एवं प्रेक्षक की उत्सुकता को बढ़ाने के लिए इसका कुशल प्रयोग किया है। जैसे ही नाटक शुरू होता है नेपथ्य से मारने-पीटने, गिरने, टूटने की आवाजें आती हैं और साथ ही किसी नारी स्वर के रोने और चीखने की आवाजें (पृष्ठ—2) प्रेक्षक की उत्सुकता को बढ़ाने में सफल होती हैं। साथ ही एक करूण दृश्य का वातावरण सहज ही उपस्थित हो जाता है।

दर्पन में भी ध्वनि प्रभाव द्वारा नाट्य तनाव उभर सका है। जब हरिपदम को पिता कहते हैं कि उसकी आस्था उनके किस काम आएगी ठीक उसी समय नेपथ्य से अजीब तरह से हंसने और चीखने की ध्वनि (पृष्ठ—78) नाट्य तनाव को गहराती है।

सूर्यमुख में प्रदुम्न का अपनी माता वेनुरती से प्रेम नैतिक दृष्टि से अन्तर्द्वन्द्व को जगाता है। व्यासपुत्र से बातें करते हुए अचानक बादलों के गरजने और बिजली के चमकने (पृष्ठ—21), के रंग संकेत द्वारा उसके अन्तरमन में चल रहे तूफान को सम्प्रेषित किया है। बाद के इनके नाटकों में शब्दाश्रय अधिक मिलता है इसलिए रंग संयंत्रों का प्रयोग भी कम होता प्रतीत होता है।

लाल ने अपने नाटकों में पात्रों की वेशभूषा के कम रंग-संकेत दिए हैं। अंधाकुआं, रातरानी, दर्पन, रक्तकमल आदि नाटकों में दिए वेशभूषा सम्बन्धी संकेत पात्रों की सामाजिक स्थिति और उनके व्यक्तित्व को ही प्रकट करते हैं। **कलंकी** नाटक के अन्त में 'कुछ प्रस्तुती करण के प्रसंग में शीर्षक के अन्तर्गत लाल ने पात्रों की वेशभूषा की चर्चा की है। इसमें उन्होंने संकेत किया है कि इस नाटक के पात्र लाल और काले रंग के वस्त्र ही पहिने (पृष्ठ—61) इस नाटक में नाटककार ने कुछ रंगों द्वारा

तांत्रिक वातावरण को निर्मित करने की चेष्टा की है। इसके अतिरिक्त, रंग के प्रयोग के सम्बन्ध में उनका अपना कथन है कि इस रंग के वस्त्रों द्वारा आदिवासियों की थकान और पराजय को व्यक्त किया जा सकता है।

रक्तकमल नाटक में, देवता की क्षत-विक्षत स्थिति एवं 'फटे गन्दे वस्त्रों' की सूचना द्वारा उसे भारत की जीर्ण शीर्ण स्थिति का प्रतीक बनाया गया है। यह प्रयोग भारतेन्दु के नाटक **भारत दुर्दशा** में चित्रित भारत की स्थिति के समान है। इस स्थिति में भारत को चित्रित करने की भारतेन्दु युग में एक रूढ़ि सी प्रचलित हो गई थी। इसीलिए इस रंग युक्ति को लाल का नवीन प्रयोग नहीं माना जा सकता।

लाल के प्रारंभिक नाटकों में मंच-सज्जा नाटकीय स्थितियों के लिए परिवेश निर्मित करने का काम करती है। यथार्थवादी शैली के नाटकों में प्रायः रंग-सज्जा द्वारा परिवेश का निर्माण किया जाता था। लक्ष्मी नारायण लाल ने प्रायः एक कमरे का दृश्यबंध ही अपने नाटकों में चुना है। **अंधाकुंआ** का दृश्यबन्ध ग्रामीण वातावरण को उभारता है। **मादा कैक्टस** में मंच उपकरण कथ्य की मूल संवेदना से अधिक जुड़ सके हैं। कैक्टस की प्रतीकात्मकता, नाटक की पूरी संरचना का अभिन्न अंग बन सकी है। **मिस्टर अभिमन्यु** का दृश्यबंध भी कथ्य की प्रतीकात्मकता से जुड़ा है। इनके नाटकों में प्रायः मंच सज्जा के रंगसंकेत बहुत कम मिलते हैं।

लक्ष्मीनारायण लाल ने यथार्थवादी शैली के साथ-साथ संस्कृत-रंग-रूढ़ियों तथा भारतीय लोक-नाट्य की रंग-रूढ़ियों को अपना कर नाट्य लेखन के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किए हैं। उनके नाटकों में बाद में दृश्यबन्ध की विस्तृत सूचनाएं अपेक्षाकृत कम होती गईं और संवादों तथा नाटकीय स्थितियों के प्रति अधिक आग्रह बढ़ता गया। यह परिवर्तन निश्चय ही लाल की विकासमान रंगदृष्टि का परिचायक है। बाद के नाटकों में इन्होंने रंग-गतियों के माध्यम से बहुत कुछ सम्प्रेषित करने का प्रयास किया है। संस्कृत नाटकों में जैसे रथ आदि मंच पर न लाकर आंगिक-व्यापार द्वारा या अभिनय द्वारा रथ चलाने का भ्रम उत्पन्न किया जाता था, उसी प्रकार लक्ष्मीनारायण लाल ने **अब्दुल्ला दीवाना** में शादी में आए

मेहमानों और प्रैस पत्रकारों को मंच पर नहीं लाकर बल्कि अभिनय द्वारा उनके आने और बैठाए जाने को व्यक्त किया है। **मिस्टर अभिमन्यु, व्यक्तिगत, अब्दुल्ला दीवाना** तथा **करफ्यू** आदि बाद के नाटकों में रंग-व्यापार भाषा की तरह ही अनेक स्तरों पर अर्थ देते हुए व्यंजित होता है।

लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में प्रयुक्त नाट्य-शिल्प निरन्तर विकास लेता गया है। उनकी रंग-सजगता भाषा, कथ्य, पात्र एवं रंग-उपकरणों के प्रति अधिक सक्रिय होती गई है। इनके नाटकों में मूक-अभिनय (माइम) का भी प्रयोग हुआ है। हरकत की भाषा, रंग-व्यापार को और भी गहराती है। हिन्दी नाटकों में रंग-सम्प्रेषण की दृष्टि से लाल के नाटक एक नये अध्याय की सर्जना करते हैं। इन्होंने कथ्य-चयन एवं पात्र-सर्जना में भी प्रतीकात्मकता को अधिक प्रश्रय दिया है। यह इनके नाट्य-शिल्प की विशिष्टता है। इनके नाटकों में संवाद अपेक्षाकृत छोटे हैं। अधिकतर शब्दों और हरकतों का आश्रय अधिक लिया है। इन्होंने नाट्य सम्प्रेषण के लिए नाट्यशब्दों, नाट्य-भाषा, मंचीय उपकरणों, रंग-गतियों, मुद्राओं, कार्य-व्यापार तथा पात्रों की प्रतीकात्मकता, उनके प्रवेश-प्रस्थान में समुचित समन्वय एवं सम्बन्ध स्थापित किया है। निश्चय ही लाल के नाटकों द्वारा हिन्दी नाट्य-शिल्प समृद्ध हुआ है। इनका झुकाव संस्कृत और लोक नाट्यशैलियों की ओर अधिक होने से, इनके नाटकों का मंचीकरण, अधिक सुविधा जनक है। **कलंकी** में ग्रीक त्रासदियों की भांति कोरस गायन है। अन्तर एवं बाह्य द्वन्द्व तथा संघर्ष योजना के कारण नाट्यतनाव पूरी तरह गहराता है। बड़ी तेजी से नाट्य कथ्य आगे बढ़ता है। कुल मिला कर, लाल के नाटकों पर भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्य शैलियों का प्रभाव बखूबी देखा जा सकता है। हिन्दी नाट्य सम्प्रेषण के इतिहास विकास में यह एक स्वस्थ संकेत है।

पौराणिक पृष्ठभूमि के नाटकों की आधुनिक प्रासंगिकता

कथावस्तु नाटक का मूलाधार है। इसके माध्यम से नाटककार मानव-जीवन के आन्तरिक सत्य और उसके यथार्थ को अभिव्यक्ति देता है। वस्तु के लिए यह अनिवार्य है कि उसमें जीवन सत्यों, शाश्वत मूल्यों और आंतरिक सच्चाई की स्थापना या प्रतिष्ठा हो। घटनाओं के क्रमबद्ध संयोजन और लगातार नाटकीय स्थितियों की योजना से ही नाटक नहीं बन जाता है। जगदीश चन्द्र माथुर, मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, ज्ञानदेव अग्निहोत्री इत्यादि नाटककार हैं जिन्होंने हिन्दी नाटक की परम्परा को एक नया मोड़ दिया और नाटक का सही मुहावरा और रंगमंच के संदर्भ में उसकी सही पहचान करवाई है। समकालीन नाटककारों में लक्ष्मी नारायण लाल का नाम एक प्रयोगशील नाटककार के रूप में लिया जाता है।

इनका प्रत्येक नाटक अपने आप में एक प्रयोग होता है। कई नाटक डॉ. लाल की रंग चेतना, प्रेक्षक सचेतता, पौराणिक आख्यानों के प्रति आग्रह, इतिहास-प्रेम आदि को तो दर्शाते ही हैं उनके सरल मानवीय दृष्टिकोण के भी परिचायक हैं। उनका प्रत्येक नाटक चाहे वह पौराणिक, ऐतिहासिक प्रतीकात्मक, आधुनिक समस्याओं जैसे सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक धरातल पर ही क्यों न रचा गया हो——उसके मूल में मानव मात्र की व्यथा-कथा का चित्रण है। उसके आसपास के परिवेश को पूरी शिद्दत के

साथ अभिव्यक्ति देने की एक सार्थक चेष्टा मिलती है। यही कारण है कि कई नाटक पौराणिक आख्यानों पर आधारित होते हुए भी उनकी आधुनिक प्रासंगिकता स्पष्ट है ।

स्वयं नाटककार का विचार है——'कथावस्तु नाटक का वह मूलाधार है, जहां से नाटक का सारा विकास, उसकी सारी परिणति और सम्भावनाएं अपने लिए ठोस भूमि पाती हैं। कथावस्तु ही नाटक में घटित समस्त समस्याओं और कार्यों की समुचित व्याख्या और अर्थबोध देती है। नाटक से उठे अनेकानेक प्रश्नों के उत्तर इसी कथावस्तु तत्व में मिलते हैं।' लाल के पौराणिक कथानकों पर आधारित नाटकों में जैसे **मिस्टर अभिमन्यु, यक्षप्रश्न, कलंकी, बलराम की तीर्थ यात्रा, राम की लड़ाई, सूर्यमुख, एक सत्य हरिश्चन्द्र, नरसिंह कथा** आदि में मानव जीवन से सम्बन्धित शाश्वत समस्याओं को उठाया है और उन्हें आज के संदर्भों के साथ जोड़ा है। कथ्य एवं चरित्र के धरातल पर लाल का यह प्रयोग उन्हें जहां एक ओर प्रयोगशील नाटककार की छवि प्रदान करता है वहीं मानव विषयक अनेक पक्षों का अध्येता, शुभचिंतक और एक ज़िम्मेदार-जागरूक साहित्यकार-इंसान के रूप में भी घोषित करता है। इस प्रकार, यह स्वतः सिद्ध है कि लाल ने अपने नाट्य लेखन में कथ्य और चरित्रों द्वारा वर्तमान को सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

मिस्टर अभिमन्यु आज के मनुष्य की जद्दोजहद और समाज में फैले भ्रष्टाचार का खुला दस्तावेज है। **यक्ष-प्रश्न**, पौराणिक प्रसंग पर आधारित जीवन स्रोतों को प्राप्त करने के लिए बड़ी से बड़ी चुनौती स्वीकार कर उसका जवाब देना है, नहीं तो मृत्यु निश्चित है — की घोषणा करता है। **कलंकी** नाटक में भी राजनीतिक परिस्थितियों का अमानवीय रूप उभरा है और उसके विरुद्ध हर रूप संघर्ष प्रमुख है। **बलराम की तीर्थ यात्रा** और **राम की लड़ाई** भी मनुष्य के अन्तरमन में चल रहे संघर्ष को दर्शाते हैं। चाहे बलराम हों या राम हों, व्यक्ति अपने अहंकार में डूबा अपराध पर अपराध करता है और अन्ततः आत्मबोध होने पर फिर रचनात्मक शक्तिओं की ओर चल पड़ता है।

सूर्यमुख नाटक में भी प्राचीन परम्पराओं, नैतिक व धार्मिक मान्यताओं के प्रति नई पीढ़ी जो क्रांति के सूर्य हैं——प्रश्न चिह्न लगाते हैं और अंत में अपनी ही आग में झुलस कर कई प्रश्नों से मानव-मन को आन्दोलित कर जाते हैं। **सत्य हरिश्चन्द्र,** सच्चाई और ईमानदारी पर तीखा व्यंग्य है। आधुनिक परिवेश की विपरीत परिस्थितियों में सभी कुछ बदल चुका है। जीवन के पुराने मानदण्ड आजके सन्दर्भ में निरर्थक हो गए हैं। **नरसिंह कथा,** नाटक में समाज में फैली हिरण्याकश्यप जैसे निरंकुश शासक की निरंकुशता और उसके विरुद्ध प्रह्लाद के रूप में मंगल विधायिनी शक्तियों के संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है और अंत में रचनात्मक शक्तियों के रूप में मानव-शक्ति की पहचान करवाई है। इस प्रकार लाल के नाटकों में छिपी आधुनिक प्रासंगिकता उनके प्रत्येक नाटक को महत्वपूर्ण दस्तावेज बना देती है।

कथ्य की भांति ही उनके नाटकों में आए चरित्रों का उद्देश्य आज के इंसान के जीवन वास्तव को अभिव्यक्ति देना है। चाहे ये पात्र मिथकीय हों या आज के परिवेश से लिए गए हों, वे सभी आज के व्यक्ति के चरित्र को उद्घाटित करते हैं। उनके नाटकों में आए पात्र कहीं मुखौटाधारी हैं तो कहीं परिस्थितियों के दवाब से प्रभावित हो खण्डित व्यक्तित्व एवं कई प्रकार के अन्तर्विरोधों का शिकार होते हैं। अभिशप्त नियति उन्हें आत्मसमर्पण, आत्मपीड़न, आत्मकुंठन और निराशा के गर्त की ओर ले जाती है तभी कोई जीवन शक्ति उनका कर थाम लेती है।

उनका प्रत्येक नाटक टूटन, विघटन तथा बनने की तिहरी प्रक्रिया से जुड़ा है। इस सबको अभिव्यक्ति देने के लिए उन्होंने प्रतीकात्मक पात्र-योजना का आश्रय अधिक लिया है। एक ही व्यक्ति के विभिन्न पक्षों को अन्य पात्रों के साथ संयुक्त करके ऐसे उनका चरित्र-विन्यास किया है कि सारा परिवेश मुखर हो उठता है। परिवेश के माध्यम से व्यक्ति की पहचान नाटक को और भी सफल बना देती है। चरित्र-चित्रण की यह टैक्नीक पुरानी है तथापि लाल के नाटक इसका अपवाद हैं। उनके नाटकों के पात्रों में यद्यपि विविधता कम है फिर भी सपाट और चारित्रिक नहीं

लगते। उनकी उपस्थिति उन द्वारा फैलाई चेतना के कारण समाज में उनके न रहने पर भी बनी रहती है।

वास्तव में, आज के विरोधी वातावरण में लाल के नाटकों में कुछ ऐसे पात्र मिलते हैं जो मानव में नई आशा का संचार करते हैं, उसकी खामोशी को चीख में बदल संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसका उदाहरण **कलंकी** का हेरूप है, **एक सत्य हरिश्चन्द्र** का लौका और **नरसिंह कथा** का प्रह्लाद आदि हैं। मिथकीय आयाम वाले पात्रों में ये चरित्र पौराणिक होते हुए भी आज भी प्रासंगिक हैं।

अतीत का प्रेरक इतिहास, वर्तमान को दिशा देता है और भविष्य को प्रेरणा। यही कारण है कि लाल ने वर्तमान परिवेश की समस्याओं को चित्रित करने के लिए इतिहास के उन चरित्रों को अपने नाटकों में लिया जो अपने समय में क्रांति के उद्घोषक और समय के सूर्य बने। उनका चरित्र, उनका मनोबल, संघर्ष करने की क्षमता ने उन्हें कालजयी बना दिया। आज के युग में भी इसी प्रकार के जननायक और जननेताओं द्वारा सब कुछ (जो गलत है) को बदला जा सकता है। इसलिए ये पात्र शाश्वत हैं। इनकी आधुनिक प्रासंगिकता इनकी कमी को और भी अधिक दर्शाती है।

लाल द्वारा प्रयुक्त नाट्य-भाषा एवं शब्द-सार्थकता उनके नाटकों को एक नया धरातल प्रस्तुत करते हैं। पात्रानुरूप भाषा द्वारा वातावरण निर्माण किया गया है जिससे उनका रंग-संप्रेषण सहज हो सका है। पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित नाटकों की भाषा को भी आम जनभाषा के रूप में ही प्रयुक्त किया है। इससे कहीं भी उनके नाटकों की प्रभाव-सृष्टि में अवरोध नहीं आया है बल्कि उसमें निहित आधुनिक बोध और भी कलात्मकता से अभिव्यक्ति पा सका है। लाल के बाद के नाटकों में इस प्रकार के प्रयोग बहुत मिलते हैं। राम की लड़ाई, सूर्यमुख, बलराम की तीर्थयात्रा, यक्ष प्रश्न आदि नाटकों में पौराणिक पात्रों के चरित्रों को आधुनिक संदर्भ में रख कर ही उनका चरित्र चित्रण किया है। इन नाटकों के कथानकों को आधुनिक समस्याओं से जोड़ा गया है। भले ही

ये नाटक अपनी सर्जनात्मक अभिव्यक्ति में कमज़ोर अवश्य हैं परन्तु आलोचकों द्वारा पर्याप्त चर्चित हुए हैं।

कलंकी :

इस नाटक में राजनीतिक परिस्थितियों का सर्वथा अमानवीय रूप उभरा है, जिसके विरुद्ध संघर्षरत पात्र हैं—हेरूप, जो अपनी प्रश्न करने की प्रवृत्ति के कारण दण्डित एवं निष्सकासित होने पर भी सर्वमंगल की कामना करता है। निरंकुश शासन से मानव-मुक्ति के लिए वह प्रश्नहीन, संघर्षहीन नहीं होता। जिसकी सजा उसे मृत्युदण्ढ के रूप में मिलती है। अपने पीछे वह प्रश्नरूपी जिस चेतना को छोड़ जाता है वही निरंकुश शासन का अन्त करती है।

हेरूप जिन परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्षरत है वह अत्यन्त जटिल है। क्योंकि **कलंकी** नाटक में हेरूप को अपने चारों ओर विसंगत परिस्थितियां मिलती हैं। यही कारण है कि वह अपने आत्मिक बल पर अकुलक्षेम जैसे निरंकुश, शक्तिशाली शासक से सीधे टकराने में भी नहीं हिचकिचाता है। वह अपनी पराजय को अर्थात आत्महत्या को वीरगति की संज्ञा देता है और मरणोपरांत भी उसी नगरी पर अपना निरंकुश आधिपत्य कायम रखना चाहता है।

'कलंकी अवतार' की साधना एवं देववृक्ष की कल्पना द्वारा उसने सामान्य जन को प्रश्नहीन बनाकर, दुबारा अपना मनमाना शासन आरम्भ किया है। सोचना, विचारना, शंका करना यहां तक कि अनुभव करना भी अब एक व्यक्तिगत विषय नहीं रह गया——ऐसे कठोर शासन तंत्र का विरोध, हेरूप करता है। हेरूप का प्रश्नकर्त्ता स्वभाव शासन तंत्र के प्रत्येक कार्य को बड़ी गंभीरता से देखता आया है।

पांच वर्ष की अल्पायु में यद्यपि हेरूप नहीं जानता था कि प्रश्न करने

से भी कोई दंडित होता है। किन्तु, राज्य के कार्यकलाप उसे आश्चर्य से भर देते हैं। यहीं से उसमें प्रश्न बढ़ने लगे——"यह नगर क्या है, क्यों है, मेरा पितृ ही अकेला सामन्त क्यों है—— प्रश्नों की इस शरशय्या पर मैं हर क्षण बैठा रहता था। पितृ मुझे अपने हाथों से दंड देते और हर तरह से मुझे डराया जाता"——(**कलंकी** : पृष्ठ 25)। उसकी चिन्तनशील प्रवृत्ति का दमन शासनकर्ता—पिता—अकुलक्षेम द्वारा वर्षों पहले ही आरम्भ कर दिया गया है। हूणों की सेना के पीछे धनुष-तीर लेकर भागा हेरूप, पिता द्वारा विक्रम विहार भेज दिया जाता है। जहां, उसकी प्रश्नशील प्रवृत्ति को दबाने के लिए उसे यातनाएं दी जाती हैं क्योंकि यही मानव चेतना है जो परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष कर सकती है और प्रजा निरंकुश शासक के विरुद्ध खड़ी हो सकती है।

हेरूप को विक्रम-विहार की दीवारें भी कैद नहीं कर सकीं और वह वहां से भी भाग कर अपने नगर पहुंच जाता है। प्रजा के प्रश्नहीन, आत्मबोध से रहित, यथार्थ का सामना कतई न करते हुए देखकर, वह हैरान है। प्रजा को वैयक्तिक-सामाजिक स्तर पर दुर्बल बनाने वाले और शवसाधना करने वाले अवधूत को वह पहचान लेता है। हेरूप की तीक्ष्ण दृष्टि, राजनीति के नीति सत्य को देखती है और वह प्रजा के समक्ष ही नहीं बल्कि अवधूत के सामने भी उस राजा को प्रकट करता है। उसीके शब्दों में—— "मैंने जब भी ध्यान किया है, मेरे अन्तः क्षितिज पर केवल दो ही रूप उभरे हैं—मेरे पिता और यहां के लोग—एक ओर महानतर अधिकार, दूसरी ओर विद्रोह अधिकार से स्वतः कटते जाना ······ यही वह स्तम्भ है, जिस पर यह विशाल भवन टिका है"—(**कलंकी** : पृष्ठ—35) वह निरंकुश शासक के अत्याचारों को सहती प्रजा को जगाने के लिए संघर्षरत होता है और अवधूत की शवसाधना के विरोध में जीवित मनुष्यों की सेवा करने की उद्घोषणा करना है—— "उस कलंकी के लिए तुम स्वयं क्यों नहीं साधना करते।"— (**कलंकी** : पृष्ठ—38)।
हेरूप का व्यक्तित्व जनशक्ति का समर्थक है जिसके सामने कोई भी स्वेच्छाचारी शासक टिक नहीं सकता।

हेरूप को प्रश्नहीन शासनतंत्र की बोली बोलता पाकर अवधूत उसे अपने तांत्रिक मायाजल में फांसने में सफल हो जाता है। उसके संघर्ष विद्रोह को पूर्णतः समाप्त करने के लिए शासन तंत्र इसे नगर का पुरपति बनाने का षड्यन्त्र रचता है। प्रजा भी अवधूत द्वारा उसके चुनाव का समर्थन करती है। हेरूप का प्रजा को अधिकार देने का प्रयास असफल हो जाता है। लोकतंत्र-शक्ति का समर्थक हेरूप निरंकुश तंत्र द्वारा पराजित होता है। किन्तु उसकी चेतना, विवेक, प्रश्न एवं स्वतंत्र चिन्तन किसी का शासन नहीं स्वीकारते।

अभिषेक के कर्मकांड के उपरांत नए पुरपति के मनोरंजनार्थ जो जैतवन की जातक कथा अभिनीत होती है उसे देख कर हेरूप का स्वतंत्र व्यक्तित्व समस्त बंधनों का विद्रोह कर उठता है। वह प्रजा को उसका विद्रोहात्मक आत्मबोध देता है——"सब एक-एक बोधिसत्व हैं"—(**कलंकी** : पृष्ठ 53)। यह हेरूप के व्यक्तित्व से निकली क्रांति की चिंगारियां हैं जो मनुष्य को उसका अधिकार दिलाना चाहती हैं। हेरूप को पुनः नगर से निष्कासित होना पड़ता है। शासन तंत्र द्वारा उसको मृत्यु दण्ड मिलता है। क्रांति का स्वर निरंकुश शासन द्वारा कुचला जाता है। हेरूप के व्यक्तित्व में पनपी जनवादी विचारधारा, मानव मुक्ति का संघर्ष भले ही उसकी आंखों के सामने सफल नहीं हो पाता किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रजा में चेतना उदित होने लगती है।

प्रजा को हेरुप ही कलंकी अवतार लगता है जो उन्हें हर युग में शासन तंत्र द्वारा कलंकी अवतार की प्रतीक्षा में होने वाली शव-साधना से मुक्ति दिलाने का मंत्र दे गया है। प्रजा उसके शब्दों को अब पहचानने लगी है—— "उसके कहने का मतलब यह था कि अपनी चिन्ता हमें खुद करनी चाहिए, नहीं तो हमारी चिंता करने वाला कोई और आ जाएगा" —(**कलंकी** : पृष्ठ 65)

हेरूप बन्दी आत्माओं का मुक्तिदाता—कलंकी—अपने पीछे अत्याचारों से मुक्ति का मार्ग और मंत्र—— "हम शव नहीं बोधिसत्व हैं"—के रूप में छोड़ जाता है। उसकी प्रश्न करने की प्रवृत्ति, विवेक प्रजा के प्रश्नों

में विस्तार पाती है। उसके प्रश्न, प्रजा के मुंह से निकलकर निरंकुश शासक के कार्यकलाप पर अंकुश ही नहीं लगाते वरन् विद्रोह करते हुए निरकुश शासक को हटाते भी हैं। इस प्रकार, हेरूप का आत्म-बोध प्रजा को स्थापित सत्ता के विरुद्ध सचेत कर उनमें जागृति भरता है।

इस नाटक में आए पौराणिक आख्यान एवं चरित्र को आधुनिक संदर्भ से जोड़ कर इसके कथ्य को एक नया आयाम दिया है। प्राचीन और आज की समस्याओं में एकरूपता दिखला कर नाटककार ने कल और आज को जोड़ा है। नि:सन्देह अन्य नाटकों की भांति, इस नाटक की आधुनिक प्रासंगिकता इसे महान नाटकों की कोटि में खड़ा कर देती है।

नरसिंह कथा :

इस नाटक में हिरण्यकश्यप और प्रह्लाद की पौराणिक कथा को आधुनिक संदर्भों में व्याख्यायित किया गया है। इसमें आए चरित्र भी कथ्यानुरूप एवं प्रसंगानुरूप आज के व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। हिरण्यकश्यप समकालीन निरंकुश शासकों का चरित्र है और प्रह्लाद इस स्वेच्छाचारी शासक के विरुद्ध, संघर्षरत जन-मंगल विधायिनी शक्तियों का प्रतिनिधि पात्र है जो निरंकुश शासन के विरुद्ध अपने व्यक्तिगत विरोध को सामाजिक संघर्ष का रूप देता है।

इस नाटक में हिरण्यकश्यप की निरंकुशता और सत्ता हथिया कर सभी अधिकारों पर अपना कब्जा बनाकर शासन करने की कथा है। हिरण्यकश्यप का निरंकुश शासन और अमानवीयता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वह भगवान के स्थान पर भी पूजा करवाता है। यही नहीं अपनी प्रभुसत्ता बनाए रखने हेतु वह प्रजा के स्वतंत्र चिन्तन और उनकी अभि-

व्यक्ति पर रोक लगाता है। इसका सबसे अधिक विरोध स्वयं उसका पुत्र प्रह्लाद ही करता है। वह अपने उज्ज्वल चरित्र, तथा लोक कल्याण-कारी दृष्टि से जन जागरण छेड़ता है हिरण्यकश्यप के निरंकुश शासन का अंत करने के लिए वह प्रजा में जागृति उत्पन्न करता है साथ ही निरंकुश तथा अमानवीय शासन तंत्र का खुला विरोध भी करता है। यह नाटक वास्तव में हिरण्यकश्यप और प्रह्लाद के संघर्ष का नाटक है। या यूं कहें कि एक ओर सत्तासम्पन्न ताकतवर राजा है तो दूसरी ओर एक साधारण, साधनहीन आम व्यक्ति है।

प्रह्लाद के संघर्ष का उद्देश्य महान है। वह अपने लिए नहीं प्रजा के लिए लड़ता है। वह प्रजा को बर्बर, अमानवीय, निरंकुश शासन से मुक्ति दिलाता है। वह जानता है कि हिरण्यकश्यप को न तो मनुष्य मार सकता है न पशु—उसे मार सकता है तो केवल—**'नरसिंह'** अर्थात् 'नर' विवेक और 'सिंह' शक्ति का योग 'नरसिंह'। किन्तु हिरण्यकश्यप द्वारा नर और सिंह के तत्वों को सदा अलग रखने का प्रयास किया गया है। क्योंकि, जहां विवेक और शक्ति मिल गए वहीं निरंकुशता का अंत है। यह 'सिंह' शक्ति हुतासन में है और हुतासन, हिरण्यकश्यप के अत्याचार, सहता है क्योंकि इस शक्ति से प्रह्लाद भी परिचित है।

वह अपने प्रयासों से हुतासन में विवेक जागृत कर इस शक्ति को 'नरसिंह' में बदल देगा। इसी कारण हुतासन पर निरंकुश शासक के अत्याचार बढ़ते हैं और हुतासन अपने अन्तर्विरोधों के साथ जंगल में पशु समान ही जीना चाहता है। प्रह्लाद उसकी आत्मा को झकझोरता है—"अपनी मातृभूमि से कुछ लेना देना नहीं? एक बर्बर निरंकुश राजा के हाथों में देश को गिरवी कर खुद निराश जंगल चले जाना, यह कहां का पौरुष?"—(**नरसिंह कथा** : पृष्ठ 25)

इन पददलित पलायनवादी लोगों को वह राष्ट्र-संग्राम से जोड़ना चाहता है। वह हुतासन को निरंकुश शासन के हर पहलू, प्रत्येक कार्य-विधि, उसकी शासन नीति से परिचित करवाता है, जिसने आदमी को प्रश्नहीन ही नहीं बनाया वरन् शुक्राचार्य जैसे बुद्धि-जीवियों को खरीदा

भी है जो, राज्य-विस्तार का कार्य शिक्षा-संस्थानों में कर रहा है।

प्रह्लाद द्वारा जन-जागृति के प्रयास को देखकर हिरण्यकश्यप प्रह्लाद को पराजित करने के प्रयास करता है। कभी विषकन्या भेजता है तो कभी डुंडा द्वारा उसे मरवाना चाहता है। जन-कल्याण की भावना से जुड़ा निर्भीक प्रह्लाद इन परिस्थितियों के समक्ष डटकर खड़ा हो पलायन की बजाय संघर्ष करता है। वह हिरण्यकश्यप की हर नीति का सामना बड़ी निडरता से करता है। वह उसे समझाकर कहता है—देश प्रेम सर्वोच्च है। इसके सामने हम या हमारी इच्छाएं न्यून हैं। परन्तु हिरण्यकश्यप की समझ में कुछ नहीं आता। हां, इतना अवश्य होता है कि प्रह्लाद के समक्ष उसकी निरंकुशता कमजोर पड़ जाती है। यही कारण है कि वह अपने साथ हुतासन को मिलाता है ताकि हुतासन में विकसित होते 'नर' तत्व की हत्या कर उसे पुनः 'पशु' बना ले। इससे, सिंहासन की सुरक्षा भी होगी और प्रह्लाद की क्राँति भी सफल न हो सकेगी।

हिरण्यकश्यप, हुतासन को प्रह्लाद की हत्या करने के लिए प्रधानमंत्री बनाने का लालच देता है। इस सारी बात की जानकारी प्रह्लाद को होती है तथापि वह हुतासन पर विश्वास करता है। क्योंकि उसे मालूम है कि —"हुतासन की जीभ में सत्ता का खून नहीं लगा। मूल्यहीन शक्ति ही पशु है। जीवन-मूल्यों से जुड़ कर मनुष्य नरसिंह बनता है। निरंकुश राजा को अगर कोई एक मनुष्य मारेगा तो वह उसी तरह उसके सिंहासन पर बैठ जाएगा। इस सिंहासन के विनाश के भीतर से एक नया लोकतन्त्र उपजे, इसके लिए अनिवार्य है मनुष्य और पशु दोनों शक्तियां एक हों—नरसिंह।"[1]

उसका विश्वास उसके 'स्वधर्म' पर टिका है जिसमें कोई दोष नहीं और हुतासन भी अपने स्वधर्म–मानवधर्म प्रह्लाद के विश्वास, जीवन-मूल्यों, संघर्ष के महान उद्देश्य से जुड़कर नरसिंह का रूप धारण करके हिरण्यकश्यप का वध करता है। 'नर' एवं 'सिंह' शक्तियों का यह योग कोई वैरागी

1. लाल लक्ष्मीनारायण : नरसिंह : पृष्ठ—66

ही कर सकता है। हुतासन के माध्यम से हिरण्यकश्यप के साथ, प्रह्लाद का संघर्ष विजय पाता है और प्रजा निरंकुश शासन से मुक्ति पाती है। किन्तु, इस मुक्ति के पश्चात् प्रह्लाद प्रजा को भविष्य में ऐसे निरंकुश शासन कर्त्ता के जन्म लेने की संभावना से भी परिचित करवा देता है। उसके विचार में हिरण्यकश्यप यद्यपि मर चुका है किन्तु उसकी याद अभी तक जिन्दा है। ऐसी स्थिति में जीवित हिरण्यकश्यप-सत्ताधारी के कान में कहेगा—हो जाओ निर्मम। ऐसा शासन अब और आसान; एक हिरण्यकश्यप ऐसा कर चुका है"—(**नरसिंह कथा** : पृष्ठ 72)। अर्थात् प्रह्लाद का संघर्ष हिरण्यकश्यप की मृत्यु के बाद भी समाप्त नहीं होता।

प्रह्लाद का चरित्र क्रांन्ति द्रष्टा तथा पथ-प्रदर्शक का है जो वर्षों से पीड़ा सहते सामान्य व्यक्ति की चेतना को जागृत कर उसे दमनकारियों के शासन को समाप्त करने की शक्ति देता है। इस नाटक की आधुनिक प्रासंगिकता इस रूप में देखी जा सकती है कि चुनाव हर पांच बरस बाद ही नहीं होता बल्कि जनता चाहे तो अपने चुने हुए प्रतिनिधि को उसकी मनमानी करने के अपराध स्वरूप, उसे हटा सकती है और नये नेता का चुनाव कर सकती है। नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल ने इस नाटक के माध्यम से आज के व्यक्ति के चिन्तन, विचार, द्वन्द्व तथा पसन्द-नापसन्द को अभिव्यक्ति दी है। पौराणिक आख्यान पर आधारित होते हुए भी यह नाटक आधुनिक समस्याओं को अभिव्यक्ति देकर, प्रह्लाद के सशक्त व्यक्तित्व से इसकी आधुनिक प्रासंगिकता को सहज ही रेखांकित कर देता है।

नरसिंह कथा आज का नाटक है। प्रह्लाद जनशक्ति का प्रतीक है तो हिरण्यकश्यप सामन्तवादी-निरंकुशता का प्रतीक है। ये दोनों पात्र पौराणिक होते हुए भी हमें आज चारों ओर नज़र आते हैं। वास्तव में व्यक्ति और दुर्व्यवस्था के बीच हमेशा टकराहट हुई है। इसलिए यह नाटक पौराणिक कथा पर आधारित होते हुए भी आज का नाटक है। इसकी आधुनिक प्रासंगिकता उल्लेखनीय है। निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि उनके कई नाटक पौराणिक कथ्यों एवं चरित्रों पर आधारित होते हुए भी आज की समस्याओं से जुड़े हैं।

एक सत्य हरिश्चन्द्र :

'एक सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में पौराणिक कथा के समानान्तर चलने वाली एक और कथा के पात्र—पौराणिक तथा आधुनिक जीवन अर्थात दोनों भूमिकाओं को जीते हैं। हरिश्चन्द्र का इन्द्र विरुद्ध संघर्ष, आज के व्यक्ति का परिस्थिति विरुद्ध संघर्ष है। हरिश्चन्द्र की भूमिका निभाता लौका परिस्थितियों के समक्ष न झुकने वाला पात्र है। नाटक में परिस्थितियों के विरुद्ध जो संघर्ष है, वह राजनीतिक धरातल का है।

ग्रामीण परिवेश में पंचायत चुनाव के नाम पर आयी राजनीति ने ग्रामवासियों के विशाल हृदय को संकीर्ण बना दिया है। धर्म, जाति, ऊंच नीच, छुआछूत के नियमों में बंटे समाज में शासनकर्ता की जड़ें मजबूत होती हैं और मानव जीवन खोखला होता जाता है। इस सत्य से परिचित लौका अपने गांव के राजनेता देवधर से टकराता है। उसे देवधर की राजनीति से नफरत है जो एक ओर स्वयं को प्रजा का सेवक कहती है किन्तु दूसरी ओर प्रजा को अपना गुलाम बनाती है। अपनी जागरूक प्रवृत्ति के कारण वह देवधर के समक्ष गांववासियों से पूछता है——"यह हमारी ओर से अकेले क्यों क्रांति करना चाहते हैं? हमें क्यों नहीं करने देते ?—एक सत्य हरिश्चन्द्र : पृष्ठ 19)।" उसका जागरूक व्यक्तित्व मानता है कि मनुष्य को अपनी लड़ाई खुद लड़नी है, इन मध्यस्थों ने तो उसे लूटा ही है।

क्रांति की इन चिंगारियों से अपने अस्तित्व को नष्ट होता पाकर, देवधर, लौका को खरीदना चाहता है किन्तु लौका का स्वतन्त्र चिन्तन, विवेक बिकाऊ नहीं है। प्रजा के विश्वास, प्रतिनिधित्व का सम्मान करने वाला लौका देवधर के प्रत्येक लालच को ठुकराता है। जिस सामान्य व्यक्ति को नीच, निम्न जाति का मान कर धर्म-राजनीति ने मन्दिर जाने एवं सत्य-नारायण की कथा सुनने में शामिल नहीं होने दिया, लौका उन्हीं के लिए अपने घर में सत्यनारायाण की कथा करवाने का निर्णय लेता है। वह

केवल निम्न जाति के लोगों को ही नहीं वरन् सारे गांव के लोगों को बुलाता है। उसकी दृष्टि धर्मकथा पर किसी जाति विशेष का अधिकार नहीं स्वीकारती। इस बिन्दु पर पहुंच कर परिस्थितियों से उसका संघर्ष और बढ़ जाता है। क्योंकि, समाज के ठेकेदार, धर्म के रखवाले, राजनीतिक नेताओं के हाथों बिके हुए हैं।

देवधर जैसे राजनीतिज्ञ, इस धर्म के सहारे साम्प्रदायिक दंगे करवा कर अपना अस्तित्व बनाते हैं। धर्म-निर्पेक्षता की बातें करना तो उनके द्वारा खाली समय बिताना या प्रजा को बेवकूफ़ बनाना है।

देवधर, लौका द्वारा सत्यनारायण की कथा करवाने पर ब्राह्मणों-शूद्रों में दंगे करवाने का निर्णय लेता है किन्तु लौका सत्य हरिश्चन्द्र का नाटक खेलता है। लौका के चरित्र (भूमिका) को बर्बाद करने तथा उसके प्रति लोगों के विश्वास को तोड़ने के लिए देवधर, इन्द्र की भूमिका स्वीकारता है। लौका के इर्द-गिर्द चक्रव्यूह बनाने के प्रयास में जीतन, विश्वामित्र की भूमिका निभाता है। इन्द्र की सिंहासन-सुरक्षा में विश्वामित्र के षड्यन्त्र अर्थात हरिश्चन्द्र को सत्य की परीक्षा तक खींच लाते हैं, ताकि क्रांति का यह स्वर दब जाय — जिससे, इन्द्र के निरंकुश शासन को खतरा है। किन्तु, हरिश्चन्द्र बने लौका का सत्य, उसकी चेतना एवं निरंकुश शासन के विरुद्ध अकेले संघर्ष करते तथा लोकतंत्र की स्थापना का प्रयास देखकर, इन्द्रासन की रक्षा करता जीतन लौका का समर्थक बन जाता है। शैव्या की भूमिका में उतरी पद्मा, देवधर की राजनीति के सत्य को पहचान कर लौका को बदनाम न करके देवधर के चरित्र को लोगों के समक्ष प्रकट करती है।

लौका जनवादी चेतना का समर्थक है। उसकी राजनीति, प्रजा की आवाज़ को महत्त्व देती है। उसके विचार में, "वह राजा ही कैसा, जो सिंहासन से चिपका हो। वह कैसा मनुष्य, जो लेकर देना नहीं जानता"—(**एक सत्य हरिश्चन्द्र** : पृष्ठ—36)। हरिश्चन्द्र की भूमिका में वह अपने वचन का पालन करता है किन्तु, जैसे-जैसे वह इस भूमिका में उतरता जाता है तो वह हरिश्चन्द्र के सत्य की पीड़ा तथा इन्द्र की राजनीति

से परिचित होता जाता है। उसके भीतर एक नया लौका जन्म लेने लगता है जिसका स्वर जनजागृति का स्वर बन कर, इन्द्र पर टूट पड़ता है। उसे सत्य-परीक्षा में सफल होने पर इन्द्र द्वारा दिया जाने वाला स्वर्ग स्वीकृत नहीं। सत्ता द्वारा बुद्धिजीवियों को पुरस्कृत तथा सम्मानित कर उन्हें खामोश कर देने की राजनीतिक चालों से लौका परिचित है। इस पुरस्कार में वह अपनी चेतना, आत्मा की आवाज का गला घोंटने को तैयार नहीं होता और देवधर से कहता है— "सुनो हरिश्चन्द्र का संवाद। ना मैं अमर हूं, ना ही मैं स्वर्ग गया। जीवन भर नरक की आग में जलकर दी अपने चरित्र की परीक्षा। तुम कहते हो मैं सफल हो गया सत् की परीक्षा में पर, मुझे कल फिर परीक्षा देनी होगी अपने सत् की। और, आज का परीक्षाफल कल नहीं आयेगा काम। इसलिए मुझे यहीं रहना होगा कल की परीक्षा के लिए। × × × × जब तक स्वर्ग में इन्द्र है, हरिश्चन्द्र को यहीं पृथ्वी पर रहना होगा"—(एक सत्य हरिश्चन्द्र: पृष्ठ 76-77)। भ्रष्ट राजनीति के समक्ष एक आम आदमी की स्थिति से वह परिचित हो चुका है।

उसके भीतर प्रश्न उठता है कि आखिर हर बार हरिश्चन्द्र ही परीक्षा क्यों दे? क्या इसलिए कि वह अपनी लोक-तान्त्रिक नीतियों एवं बढ़ते प्रभाव के कारण इन्द्रासन के लिए खतरा बन गया है, क्या इन्द्रासन की सुरक्षा हेतु सत्य को बार-बार परीक्षाओं की पीड़ा को भुगतना होगा। अथवा, सफल हो जाने पर पुरस्कृत होकर समाज से निष्कासित होना पड़ेगा ताकि शासन की तानाशाही जारी रहे! इस सत्य को पाकर ही वह कहता है—— "अब तक सब कुछ इन्द्र ने कहा था, अब हरिश्चन्द्र कहता है— चलो इन्द्र! अब तुम दो अपने सत्य की परीक्षा" —(एक सत्य हरिश्चन्द्र: पृष्ठ 77)।

उसके स्वर में आज के पीड़ित व्यक्ति का स्वर मिलता है—— "हरिश्चन्द्र सदा अपने सत्य की परीक्षा देता रहे और तुम परीक्षा लेते रहो। मैंने इस नाटक में राजा बन कर देख लिया, जब तक तुम हो, हम केवल बनाये ही जा सकते हैं, अपने-आप में कुछ नहीं हो सकते। पर,

अब बनने और होने का मर्म हमें मिल गया। चुप रह जाना हमारा विरोध था। पर, तुम उस भाषा को नहीं समझ सके। सत्ता है तुम्हारे पास। हम सब तुम्हारे हाथों में सिर्फ कठपुतले थे। यह सारा नाटक तुम्हारा रचा हुआ था। और तुम्हीं इसके सूत्रधार थे। चलो। अब तुम्हें देनी होगी परीक्षा अपने सत्य की"—(एक सत्य हरिश्चन्द्र: पृष्ठ 77)।

लौका द्वारा प्राप्त सत्य से परिचित तथा उसके शक्तिशाली व्यक्तित्व से अकेले टक्कर लेने की क्षमता को देखकर प्रजा भी एक सुदृढ़ सहारा पाकर, निरंकुश शासक के विरुद्ध खड़ी हो जाती है। इस प्रकार, लौका द्वारा जन जागृति का संघर्ष सफल होता है। उसकी संघर्षशीलता, लोकमंगल की भावना उसके व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाती है। अकेला संघर्ष करता हुआ लौका न तो परिस्थितियों से समझौता करता है, न पलायन और न ही वह बिककर अपने उद्देश्य से भटकता है। इस प्रकार, अहिंसक, सत्याग्रही लौका का संघर्ष जटिल परिवेश पर विजय पाता है। गांव के लोग भी इसीलिए उसे सम्मान देते हैं। लौका का चरित्र, आज के मानव की आशाओं का पुंज है। उसके संघर्ष में भारतीय-जनमानस की आकांक्षाएं जीती हैं।

इस नाटक का रंगशिल्प कथ्य के अनुरूप है। ग्रामीण परिवेश को को उजागर करती भाषा, पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने में समर्थ है। कथ्य एवं चरित्र की दृष्टि से यह नाटक महत्त्वपूर्ण है। कुल मिलाकर हरिश्चन्द्र का मिथकीय प्रयोग, आधुनिक प्रसंगों से जुड़कर, इसके कथानक को गरिमा प्रदान करता है। निःसन्देह परम्परा और प्रयोग तथा अभिनेयता की दृष्टि से यह नाटक बहुत ही सशक्त है। इसकी आधुनिक प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध है।

इस नाटक का पात्र लौका केन्द्रीय पात्र है। जिसके चारों ओर पूरा नाटक स्वरूप लेता है। लाल ने इस पात्र के माध्यम से हरिश्चन्द्र के मिथक को आधुनिक संघर्ष रत इंसान से जोड़ा है। जिस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र ईमानदारी और सत्य के मार्ग पर चलते हुए

नित्य नयी परीक्षाओं और चुनौतियों का सामना करते रहे, ठीक उसी प्रकार लौका भी अपने जीवन में संघर्ष करता रहा। नाटक का सम्पूर्ण कार्य व्यापार कहीं इस पात्र के इर्द-गिर्द घूमता रहता है।

यह नाटक भाषा, कथ्य, चरित्र एवं रंगशैली के आधार पर एक नवीन प्रयोग कहा जा सकता है। पौराणिक प्रसंगों तथा चरित्रों के माध्यम से आधुनिक जीवन को इस नाटक में बड़ी कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है।

लाल के इन तीनों नाटकों के अतिरिक्त और भी नाटक हैं जिनमें पौराणिक अख्यानों एवं चरित्रों को लिया गया है और उनके माध्यम से आधुनिक संदर्भों को अभिव्यक्ति मिली है। यक्ष प्रश्न, बलराम की तीर्थ-यात्रा, सूर्यमुख, राम की लड़ाई, मिस्टर अभिमन्यु आदि नाटकों में कथा एवं चरित्र के धरातल पर पौराणिक संदर्भों को आधुनिक प्रश्नों और समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया गया है। यही नहीं लाल पर पाश्चात्य नाट्यशैली एवं शिल्प का प्रभाव भी काफी पड़ा है और अपने इस रंगअनुभव को उन्होंने **कलँकी** नाटक में संजोया है।

नाटककार लाल फ्रांस के समकालिक नाटककार अन्तोनिन आरतौद से विशेष प्रभावित हैं। आरतौद ने छठे दशक में जिस Theatre of Cruelty की शुरुआत की, उसमें हत्या, क्रूरता का बोलबाला था। नयी पीढ़ी, उससे बहुत प्रभावित हुई थी और इंगलैंड में भी पीटर बुक निर्देशन में बहुत से निर्मम-हिंसात्मक नाटक प्रस्तुत किए गए थे। अन्तोनिन आरतौद की कृति 'लथियातए सो इब्ल' में ऐसी अस्वस्थ मनःस्थितियों, निर्मम, ऐन्द्रिक, अनुभवों की खोज है, यहां कृति नयी पीढ़ी की निर्मम हत्याओं, बलात्कार और तोड़-फोड़ से भरे नाटकों की प्रेरणा बनी।[1] **कलंकी** नाटक में कलंकी अवतार की प्रतीक्षा कहीं सेम्युल बेकेट के 'वेटिंग फॉर गोदो' की याद दिलाती है तो शवसाधना और हत्या एवं रहस्यमय

1. Laurence Kitchir, "Drama in Sixties, form and Interpretation ; fabee and fabee Ltd., London, Edition 1968, Page—21.

वातावरण पर भी आरतौद की छाया नज़र आती है। यही नहीं गांव वालों के समूह गीत कहीं ग्रीक के कोरस की भी स्मृति करवाते हैं।

सूर्यमुख नाटक के पौराणिक आख्यान और युद्ध के पश्चात् उत्पन्न भीषण वातावरण को लाल ने कहीं मुक्त प्रेम की समस्या, फ्रायडियन मनोविज्ञान तथा प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उत्पन्न वातावरण-स्थिति एवं समस्याओं से जोड़ा है। सोफोक्लीज़ के ग्रीक नाटक **किंग ईडीपस** में भी **सूर्यमुख** जैसी प्रेम की समस्या मिलती है। यद्यपि जो अपराध अनजाने में हुआ, उसके ज्ञान पर 'ईडीपस' में जैसा अपराध बोध है वह प्रद्युम्न और वेनुरती में नहीं है परन्तु आज की उन्मुक्त युवा पीढ़ी की स्वच्छंदता और खुलेपन को प्रद्युम्न और वेनुरती में देखा जा सकता है।

वीर अभिमन्यु और **मिस्टर अभिमन्यु** में मूलभूत अंतर यह है कि प्राचीन अभिमन्यु को आधुनिक युग के मिस्टर अभिमन्यु में बदला गया है। आधुनिक मनुष्य को उसके आन्तरिक और बाह्य परिवेशों में रखकर राजन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। उसकी त्रासदी बिल्कुल आज की त्रासदी है। उसके सवाल आज के सवाल हैं, उसका चक्रव्यूह बिल्कुल आज का चक्रव्यूह है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पौराणिक प्रसंग के ऐसे उपयोग की प्रभावशाली रचना हिन्दी नाट्यक्षेत्र में संभवतः पहली बार हुई हैं। इस नाटक में पौराणिक कथा होते हुए भी सारा आधुनिक परिवेश है। अभिमन्यु शब्द शीर्षक में है परन्तु कोई भी पात्र इस नाम का नहीं है तथापि आधुनिक अभिमन्युओं (आम इंसान) के चरित्रों को को बड़े मार्मिक रूप से व्यंजित किया गया है। 'अभिमन्यु' और 'चक्रव्यूह' मात्र दो शब्दों के माध्यम से संवेदनात्मक अनुभूति जगाकर लाल ने उसे बड़ी सहजता और सरलता से आज के व्यक्ति और उसकी परेशानियां से व्याख्यायित कर दिया है। इस प्रकार मिथकीय संदर्भ के माध्यम से यथार्थवादी रंगमंच की सीमाओं को तोड़ते हुए लाल ने पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित नाटकों के माध्यम से आधुनिक प्रासंगिकताओं को बड़ी सफलता से अभिव्यक्त किया है।

लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में पात्र-सृष्टि

संस्कृत नाटकों में पात्रों का निश्चित् स्वरूप था। अब नाटक की अवधारणा बदल गई है। अब नाटक में मुख्यपात्र या केन्द्रीयपात्र जनसामान्य से हो सकता है। उसके लिए धीरोदात्त, धीरप्रशान्त, धीरललित और धीरोद्धत होने की आवश्यकता नहीं। नेमिचन्द्र जैन के अनुसार—— "नाटक का पात्र नाटक में अपने कार्यों के बल पर ही जीवित रहता है और अन्ततः अपने कार्यों के द्वारा ही वह नाटक को आगे बढ़ाता है।" सामान्य जीवन में चरित्रगत विविधता देखी जाती है। इसी आधार पर रंगचेता नाटककार अपने पात्रों के चरित्र निर्वाह में एकरूपता या एकरसता से बचता है। उसका प्रयत्न होता है कि प्रत्येक पात्र अपनी विशेषता लिए हो क्योंकि——‘चरित्र के माध्यम से ही कथावस्तु बनती है। चरित्र का व्यक्तित्व, उसकी इच्छाशक्ति ही नाटक का सारा कार्य व्यापार है’—— ऐसी डाक्टर लक्ष्मीनारायण लाल की धारणा है।

लाल ने अपने नाटकों में चरित्रों को यथार्थ के धरातल से लिया है। उनके मनोविज्ञान में पैठकर उनके आन्तरिक स्वरूप को उभारने का प्रयास किया है। जयशंकर प्रसाद की भांति ही लाल ने अपने चरित्रों के सूक्ष्म मनोविज्ञान को कई नाटकों में बड़ी कलात्मकता से प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि उनके कई पात्र अपनी निश्चित् पहचान स्थापित कर सके हैं।

(i) जीवन सत्य से साक्षात्कार करने वाले पात्र :

आज के मनुष्य की त्रासदी को व्यंजित करने के लिए प्रतीकों, मिथकों, दृश्य-बिम्बों, पौराणिक-आख्यानों, मनोविज्ञान, पौधों आदि का आश्रय लिया है। यही नहीं **करफ्यू** नाटक में तो सामाजिक-नैतिक वर्जनाओं को 'करफ्यू' शब्द द्वारा प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देकर पात्रों के मनोविज्ञान पर घटाया है।

डाक्टर लाल ने कार्यवस्था को चरमसीमा तक लाने के लिए अपने नाटकों में पात्रों को कहीं मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से तो पीड़ित-चित्रित किया ही है, बाहरी संघर्ष से भी जूझते हुए दर्शाया है। इस युक्ति से नाट्य-तनाव की अपेक्षित सृष्टि हुई है। इब्सन के **डालसहाऊस** में इस प्रकार पात्रों और उनकी कार्य अवस्थाओं के साथ-साथ, नाट्य तनाव को चरमसीमा तक विकास लेते हुए दिखाया है। लाल के **मिस्टर अभिमन्यु** नाटक में राजन के चरित्र को इसी क्रम में चित्रित किया है। इस नाटक का अंतिम दृश्य और उसमें राजन के कार्यव्यापार से यही सिद्धि करवाई गई है कि आत्मन जो राजन की आत्मा या उसके अन्तरमन का प्रतीक था, उसकी हत्या हो चुकी है। अब राजन यंत्रवत बेजान सा समझौता परस्त आम आदमी है। **डाल्सहाऊस** की 'नोरा' ठीक इसके विपरीत घर त्याग का निर्णय अपने पति को बताती है। इस नाटक की चरम सीमा को लाल ने यूं चित्रित किया है :

—— रागस्टाड नोरा के रहस्योद्घाटन की धमकी देता है।

—— नोरा अपने पति हैल्मर से रागस्टाड को न निकालने के लिए वकालत करती है और असफल होती है।

—— रागस्टाड वही भयानक पत्र हैल्मर को लिखता है।

—— नोरा पूर्ण प्रयत्न करती है (नाच गाकर तक) कि पति वह पत्र न पढ़ सके।

—— पति उस पत्र को पढ़ता है तथा पत्नी (नोरा) को कलंकित करता है।

—— रागस्टाड का दूसरा पत्र पति (हैल्मर) की इज्जत और नाम को बचाता है।

—— नोरा अपने उस घर-त्याग के निर्णय को पति से बताती है।

डालसहाऊस नाटक की ये सारी चरमसीमाएं नाटक के उसी मूल कार्य से संबंधित हैं, जहाँ भावना का क्रमिक विकास अपनी स्वाभाविक परिणति को सहज ही प्राप्त होता है।[1]

लाल ने अपने नाटकों में जनसामान्य के जीवन सत्य का साक्षात्कार प्रस्तुत करने के लिए पात्रों एवं चरित्रों को रचा है। एक ओर ये स्वयं आत्म साक्षात्कार की प्रक्रिया से गुज़रते हैं तो दूसरी ओर समाज में व्याप्त अनेक मुखौटाधारी चरित्रों का भी दर्शन करवाते हैं। वास्तव में लाल के नाटकों के पात्र तीन सोपानों से गुज़रते हैं— जहां पात्र में एक आन्तरिक शक्ति, गति और मनोवैज्ञानिक कुंठा है वहां वह 'चरित्र' है। गति देने वाली शक्ति को जानने की जिज्ञासा और प्रश्नाकुलता उसे 'व्यक्ति' बनाती है और उस प्रश्न के उत्तर से साक्षात्कार होते ही वह 'मनुष्य' बन जाता है। इस प्रकार चरित्र से मनुष्य तक की यह यात्रा लाल को व्यक्तिवादी से सामाजिक बनाती है। इसीलिए इनके यहां विशिष्ट चरित्र वाले पात्रों का प्रायः अभाव है। यहां समाज और मनुष्य अपनी समग्रता में विद्यमान हैं। कहीं-कहीं तो चरित्रों के विशिष्ट नाम तक नहीं हैं — वह समाज के मुख्य वर्गों के प्रतिनिधि मात्र हैं। लाल के पात्रों की यह चरित्र-यात्रा वास्तव में संज्ञा से सर्वनाम बनने की है—ऐसा जयदेव तनेजा का विचार है। **व्यक्तिगत** नाटक में लाल ने 'मैं' का चरित्र बहुत ही विस्तृत फलक पर चित्रित किया है। स्वातंत्र्योतर भारत वर्ष में फैली हफड़ा-दफड़ी, हड़पने की प्रवृत्ति, उपजीविता और मनुष्य के विभिन्न मुखौटाधारी चेहरों का प्रतिनिधित्व करता है 'मैं'।

व्यक्तिगत उस अधिकार अपहरण का प्रकटीकरण है जो व्यक्ति को हमेशा दूसरे व्यक्तित्व पर हावी होने तथा खत्म करने का रास्ता दिखाता

1. लाल लक्ष्मीनारायण : रंगमंच और नाटक की भूमिका : दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1965, पृष्ठ—115

है। 'मैं' ऐसा ही पात्र है जो 'वह' था—वह विशिष्ट से सामान्य बन गया है अर्थात् जीवन में व्यक्तिवाचक संज्ञाएं ('मैं' वह आदि) ही व्यक्ति मात्र रह गया है। व्यक्तित्व के इन खण्डित रूपों की आपसी टकराहट से उपजे द्वन्द्व में जी रहे आज के व्यक्ति की त्रासदी को उभारा है। आज के व्यक्ति का कुछ भी व्यक्तिगत नहीं रहा, यहां तक कि उसका नाम भी। आत्मपरिचय के अभाव में वह कई मुखौटे धारण करता जाता है। यह विवशता आधुनिक परिवेश की देन तो है ही कहीं-कहीं उसने स्वयं ही किन्हीं धारणाओं को ओढ़ लिया है जिससे, उसका अपना व्यक्तित्व दब गया है। ओढ़े गए विचार और धारणाओं ने आज के मानव-जीवन को कुंठाएं और पलायन ही दिया है। समसामयिक परिवेश में जी रहे व्यक्ति की मुखौटाधारी प्रवृत्ति को लाल ने कई पात्रों के माध्यम से अपने नाटकों में चित्रित किया है।

मादाकैक्टस का अरविन्द ऐसा ही पात्र है जो स्वयं को उच्चकोटि का चित्रकार साबित करने के लिए मिलने आए लोगों को समय नहीं देता। भले ही वह खाली बैठा हो। झूठी, आडम्बरपूर्ण ज़िन्दगी जीने के लिए वह अपने नौकर को भी झूठ बोलने के लिए विवश करता है। यही नहीं उसकी इस अहम्‌वादी मुखौटाधर्मिता की शिकार हुई है सुजाता और मीनाक्षी। सुधीर, शिकारी के रूप में अरविद के नारीभक्षक रूप को उजागर करता है, यह कह कर कि— गोली कौन नहीं चलाता? हां, तरीके अलग-अलग ज़रूर होते हैं।———कोई जाल में फंसाकर मारता है, कोई———(**मादाकैक्टस**, पृष्ठ—18)। इस नाटक में दद्दा, पुरानी पीढ़ी का प्रतीक हैं तो सुधीर सूत्रधार की भूमिका निभाता है और अरविन्द के व्यक्तित्व का विरोधी रूप भी।

लाल ने अपने नाटकों में पात्र के आन्तरिक और विरोधी दोनों पक्षों को साथ-साथ उभारा है। विरोधी पात्र उसका आन्तरिक विकास करते हैं और उसके बाहरी व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालते हैं। चरित्र विकास की यह पद्धति उनके कई नाटकों में मिलती है। **मिस्टर अभिमन्यु**, इस दृष्टि से सबसे अधिक सफल रहा है।

करफ्यू नाटक के चरित्र औपचारिकता, शिष्टाचार के आडम्बरपूर्ण, कृत्रिम बंधन एवं सामाजिक दृष्टिकोण के अनुरूप अपने जीवन की स्वाभाविकता खोकर एक असहज, आरोपित जीवन जीते हैं। इस नाटक के स्त्रीपात्रों के विषय में नाटककार की धारणा है कि——आधुनिक स्त्री ज़िन्दगी की कायरताओं से गुज़र कर ही सुविधा के लिए और समाज में इज्ज़त-और सुख पाने के लिए अन्ततः शादी कर लेती है और एक बंधे-बंधाये और सीमित क्षणों की दाम्पत्य ज़िन्दगी इस तरह जीती रहती है कि कहीं कोई उसकी और सच्चाई न जान पाए। इसलिए भी वह स्वयं अपनी और दूसरों की ज़िन्दगी पर 'करफ्यू' लगा लेती है और उसके भीतर वह आराम की ज़िन्दगी बसर करती रहती है——('करफ्यू' के बारे में लेखक की निजी डायरी से, करफ्यू : पृष्ठ—12)। दूसरी ओर संजय अपने नाटकों के पात्रों और उनके चरित्रों में खो गया। उसके विषय में कविता का यह संवाद——'जी में आया, पत्नी, छोड़ दी, जैसे कोई भूमिका पसंद न आए——' बिल्कुल सही लगता हैं।

वह ऐसा अभिनेता है जो एक चरित्र को मंच पर जीता है और कुछ दिनों बाद भुला देता है। कविता का सम्पर्क ही उसे अपने चरित्र-व्यक्तित्व की पहचान करवाता है। यही नहीं कविता को भी उसके 'करफ्यू' लगे जीवन से मुक्त होने की प्रेरणा देता है। करफ्यू की रात गौतम के घर मनीषा आती है। मनीषा और गौतम दोनों ही अभी तक ओढ़ी हुई, झूठी आडम्बर पूर्ण औपचारिक ज़िन्दगी के झूठ से मुक्त होकर अपने को पहचानते हैं। और पाते हैं बाहर से दीखने वाली स्वतंत्रता असलीयत नहीं है क्यों कि स्वतंत्र 'बनने' और 'होने' की अपनी-अपनी कीमतें हैं। आदर्श पति-पत्नी का मुखौटा सामाजिक जीवन की एक आवश्यकता है जो पति-पत्नी बने दो इंसानों को एक साथ जीने पर विवश करती है। जो एक **'करफ्यू'** के आतंक की तरह मन की सहज भावनाओं को रोके रहता है, जो गलत है।

गौतम स्वीकारता है मानव द्वारा अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति का दमन सर्वथा अनुचित है क्योंकि विभिन्न चेहरे लगाये, खुद पर पाबन्दियां लगाकर,

व्यक्ति नहीं जी सकता। मौका मिलते ही वह विध्वंसक तरीके से अपने इस बाहरी खोल को नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है। आज के व्यक्ति के जीवन से जुड़े **करफ्यू** नाटक के पात्र 'करफ्यू' के समान समाज और उसके लोगों से भयभीत होकर खुद पर कुछ न कुछ अवांछित लादे हुए हैं। व्यक्ति कभी भी मानसिक स्तर पर सामाजिक भय से मुक्त नहीं हो पाता, जबकि मुक्ति वह चाहता है।

(ii) **खण्डित-व्यक्तित्व एवं अभिशप्त नियति वाले पात्र :**

आधुनिक परिस्थितियों में आम आदमी कई अन्तर्विरोधों का शिकार बन रहा है। उसका खण्डित व्यक्तित्व उत्तरोत्तर अभिशप्त नियति की ओर ढकेलता है। एक ही धरातल पर खड़ा वह स्वयं को एक साथ अनेक परस्पर विरोधी और विपरीत भूमिकाओं में उतरा पाता है। उसके व्यक्तित्व का निरन्तर खण्डन और उसकी अस्मिता का निरन्तर विभाजन उसे तनावपूर्ण मनः स्थिति में जीने को विवश करते हैं। डाक्टर चन्द्रशेखर ने इसे इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है—— "एक ही जीवन में दोहरा–तीहरा और चोहरा जीवन जीने की विडम्बना भी अतीव भयंकर है। वह, हमें मिली एक कठोर यन्त्रणा है। हम कोई भी जीवन जी नहीं पाते हैं। सब अजीये-अभोगे प्रसंग हमारे हाथों से फिसल–फिसल जाते हैं। परिणामतः हमारे भीतर एक भयंकर महाभारत छिड़ जाता है। एक ऐसे उद्दाम संघर्ष और द्वन्द्व का समारम्भ हो जाता है, जिसमें समकालीन व्यक्ति ने सदा हार खाई है"[1] परिवेशगत जटिलताएं उस पर हावी ही नहीं वरन् उसकी हत्या कर, अपनी स्वायतता घोषित करती हैं। मानव के खण्डित व्यक्तित्व के अन्तर्विरोध एवं अभिशप्तता को लाल ने अपने नाटकों में बड़ी सूक्ष्मता और मार्मिकता से दर्शाया है। इस दृष्टि से दर्पन, अंधाकुआं, मिस्टर अभिमन्यु, सूर्यमुख आदि नाटक प्रमुख हैं।

अन्तर्द्वन्द्व से पीढ़ित, मनोवैज्ञानिक आधार पर विकसित पात्रों में **दर्पन** की पूर्वी का व्यक्तित्व मानवीय धरातल पर अपने ही विरुद्ध जद्दोजहद

1. चन्द्रशेखर : हिन्दी नाटक और लक्ष्मीनारायण लाल की रंगयात्रा : दिल्ली : प्रवीण प्रकाशन, 1988, पृष्ठ—47

करते देखा जा सकता है। **अंधाकुआं** की सूका ने अपनी स्वतंत्रता हेतु एक और संघर्ष किया था किन्तु समाज के रीति-रिवाजों, मान्यताओं ने उसके संघर्ष को असफल कर दिया। परिणामतः सूका को अपनी अभिशप्त नियति को स्वीकार कर जीवन ढोने के लिए विवश होना पड़ता है। इन्दर बंधी हुई सूका को आधीरात में छुड़ाने आता है परन्तु सूका उसके साथ नहीं जाती क्योंकि इन्दर की कायरता, दब्बूपन को वह एक बार भोग चुकी है। उसका अन्तर्द्वन्द्व उससे बुलवाता है—— 'पुलिस मुझे गिरफ्तार कर रही थी और तू दूर गली में खड़ा-खड़ा मेरा मुंह ताक रहा था, तब मुझे देखकर तेरी तबीयत नहीं भरी थी? बोल, भरे इजलास में झूठ बोलकर राम-रामायण की कसम खाकर जब जलालपुर के लोग मुझे ठग रहे थे, तब भी तू खड़ा-खड़ा इसी तरह मेरा मुंह ताक रहा था'—— (पृष्ठ—49)। यही नहीं इन्दर द्वारा जबरन ले जाए जाने पर वह 'चोर-चोर' का शोर मचा घर के लोगों को जगा देती है।

अपनी विकल्पहीनता में वह भगौती के समक्ष पराजित होकर भी उसे हर ढंग से प्रसन्न रखना चाहती है क्योंकि वह जानती है—— 'जो करम में है वही अपना है'— (पृष्ठ—52)। उसकी अभिशप्त नियति यह है कि अपने अपाहिज पति को इन्दर से बचाती हुई मारी जाती है। सारा जीवन दो वक्त की रोटी और एक छत की सुरक्षा पाने के लिए लड़ते-लड़ते बीत जाता है और अंत तक हासिल कुछ भी तो नहीं होता। सृष्टि रचनहारा भी इस त्रासद विडम्बना को दूर नहीं करता। 'गांव की अनपढ़ नारी की लाचारी, करुणा, घुटन और पति के सारे दुर्व्यवहारों को सहने की अपूर्व क्षमता पूरे यथार्थ, सम्पूर्ण प्रभाव के साथ नाटक में मूर्त हो गई है। लगता है सूका नाटक की नायिका नहीं, वरन् वह आज के गांव-गांव में इसी प्रकार सिसकियां भरती हैं और अंधेकुओं की गोद में सो जाती हैं दुबककर। स्वतन्त्र भारत की प्रगतिशीलता की पृष्ठभूमि को देखते हुए यह संपूर्ण चित्र कितना चुभने वाला है; रगों को छू देने वाला है!!''[1]

1. रस्तोगी गिरीश : हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और विवेचन : कानपुर; ग्रन्थम प्रकाशन, वर्ष 1967, पृष्ठ—127.

दर्पन नाटक के सभी पात्र, पूर्वी को छोड़कर सहज, सरल और पारदर्शी हैं। इसे नायिका प्रधान नाटक कहा जा सकता है। एक साथ पूर्वी और उसके अन्दर की दर्पन के मनभावों का कलात्मक चित्रण इस चरित्र की विशिष्टता है। नाटककार ने बड़ी सूक्ष्मता और गहराई से पूर्वी का चरित्र दर्पन के कोण में रखकर निर्मित किया है।

आत्मोपलब्धि के लिए व्याकुल एक नारी का करुणापूर्ण चित्र नाटक की मूल संवेदना है। वह सोचती है, अपना नाम बदलकर अपने व्यक्तित्व के मूलभूत रूप से छुटकारा पा जायगी। साथ ही जिस परिपूर्णता की उसे खोज है उसे भी प्राप्त कर सकेगी। पूरे नाटक में पूर्वी का अन्तर्द्वन्द्व नाट्य-तनाव का गठन करता है। घटनाओं का क्रमिक विकास बड़ी तीव्रता से उसे अपने भीतर की दर्पन से साक्षात्कार करवाता है। अपने भीतर के सत्य को वह पहचानने के लिए विवश होती है। अन्त में लाल ने पूर्वी तथा हरिपदम के व्यक्तित्वों में विराटता और महात्म्य का निदर्शन कर एक बोझ सा लाद दिया है। यह स्थिति अधिक स्वाभाविक नहीं लगती।

दर्पन का कथानक एक ही दृश्यबंध पर घटित होता है और स्थानान्तर पर घटित होने वाली घटनाओं को सूचनाओं द्वारा बतलाया गया है। पूर्वी का अतीत इसी प्रकार की दृश्य योजना द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। इसमें एक कमी यह रह गई कि पूर्वी का केवल पूर्वीवाला रूप तो सामने आता है लेकिन दर्पन वाला रूप कमज़ोर हो गया है। इसी से नाटक के अंत में पूर्वी को गहरे पीले गेरुआ वस्त्रों में देखकर चौंकना पड़ता है। शायद प्रेक्षक इस प्रकार के मोड़ की स्थिति को देखने के लिए पूरी तरह तैयार नहीं होंगे। पी.ए.सी. बटैलियन के कैप्टन की बेटी और डॉक्टर तथा इंजीनियर दो भाइकों की बहिन दर्पन जब तीन साल की थी, तभी उसकी जन्मपत्री बनवाई गई, जो अद्भुत थी। मूल नक्षत्र में जन्म, आठवें में मंगल, तीसरे में राहु, चौथे में केतु और सातवें में शनि। सिर पर उसके तीन लटें थीं——त्रिशूल लट। इसके अलावा कई ऐसे चिह्न थे शरीर पर जिनका अपना अर्थ था। कुल गुरु के कहने पर पांच वर्ष की छोटी सी अवस्था में ही दर्पन को बौद्ध मठ में दान कर दिया

गया। बाद में उसने वहीं डाक्टरी का काम किया। बी.एस.सी. भी पास की। धीरे-धीरे उसके व्यक्तित्व का विकास हुआ। उसके अपने विचार थे सोचने का ढंग था। यही कारण था कि लामा महाराज से प्रायः उसकी अनबन हो जाती। दर्पन की मान्यता थी कि सत्य परिवर्तन-शील है इसीलिए मठ की प्राचीन रूढ़ियों को भी बदलना चाहिए। उसके विचार में 'प्रेम' ही मानवता की असली सेवा है। संसार में रह कर ही उसका शुभ सोचा जा सकता है। संसार से विरक्त होकर क्या किया जा सकेगा ? उसके लिए धर्म का अर्थ—दया, प्रेम करुणा, ममता है। वह जहां भी किसी रोगी, अपाहिज, जरूरतमंद को देखती उसी की निःस्वार्थ भाव से सेवा में जुट जाती। इसका उदाहरण है कालरा से ग्रस्त हरिपदम की सेवा। इसी अनुरक्ति विरक्ति के द्वन्द्व ने उसे कई बार बौद्ध मठ से दूर भी किया। वह हरिद्वार ऋषिकेश, बद्रीनाथ, रामेश्वरम्, वृन्दावन, कलकत्ता, बम्बई, काशी इत्यादि भी घूमफिर आये। उसके मन का अन्तर्द्वन्द्व है कि—— 'स्वर्ग यदि मन को स्वर्ग के समान न लगे, मुक्ति यदि प्राणों को शांति न दे सके, हृदय यदि सारे सुखों के बावजूद मृग के समान दूर कानन में भटकता फिरे, तब उसकी क्या गति होगी'——दर्पन : पृष्ठ---48)। हरिपदम का नैकट्य उसे दर्पन से पूर्वी बनाता गया। यह नाटककार की दृष्टि और नाट्यानुभूति की पहचान का प्रमाण है कि उसने इस चरित्र को इसी नाटकीय और तीव्र द्वन्द्वात्मक बिन्दु से उठाया है और उसके इस पूर्व-जीवन-परिचय को पृष्टभूमि में छिपा रखा है। दर्पन का यही वह नाटकीय धरातल है जहां से पूर्वी अपने वर्तमान को जीने के लिए अपनी पिछली जिन्दगी से मुक्ति चाहती है। पूर्वी और दर्पन के बीच का द्वन्द्व ही उसकी व्यथा-कथा है। 'दर्पन' वह आईना है जो पूर्वी तोड़ना चाहती है ताकि भूले से भी वह उसमें अपने-आपको न देख सके। जयदेव तनेजा के शब्दों में—— "पूर्वी और दर्पन की यह लड़ाई पहली बार नहीं हो रही है, शायद यह एक चिरन्तन द्वन्द्व है——प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच चुनाव का द्वन्द्व, जो प्रत्येक देश और

प्रत्येक काल में मानव-मन को मथता आता है।"[1]——पूर्वी अपने विगत से पीछा छुड़ाने के लिए हर क्षण संत्रस्त है। यहां तक कि अपने अतीत और दर्पन के प्रतीक रूप में बची अपनी डायरी को जलाते हुए उसके मन की जलन से प्रेक्षक-पाठक को भी झुलसाने लगती है। डायरी जला कर भी पूर्वी को ऐसा भ्रम होता है जैसे दर्पन रो रही है। उसका मनोविज्ञान इस सीमा तक रूग्ण हो गया है कि उसे लगता है वह अपने साथ तो छल कर ही रही है परन्तु हरिपदम की अच्छाई से भी भय खाने लगती है। मन ही मन अपराध बोध से ग्रस्त होती जाती है। हरिपदम से विवाह के लिए तैयार होते हुए भी निरन्तर शंकित रहती है क्योंकि उसे आशंका है कि——'जब तक हममें कोई विश्वास पूर्ण होने को होता है सहसा तभी कोई उसे झुटला देता है। और, झुठलाने वाला——वह एक नहीं है कि उसे नाम दिया जाय। वह इतना आसान भी नहीं है कि सहज पकड़ में आए'——(**दर्पन** ; पृष्ठ 87)। दूसरी ओर हरिपदम का चरित्र इतना सपाट है कि वह किसी भी दशा में अपनी प्रेमिका (पूर्वी उर्फ़ दर्पन) से अलग नहीं होना चाहता। लाल ने संभवतः दर्पन के विषम और गुंजलदार चरित्र को पूर्णाभिव्यक्ति देने के लिए हरिपदम जैसे एकदम सरल चरित्र की सृष्टि की है। ठीक उसी प्रकार जैसे मोहन राकेश ने 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास और विलोम, 'लहरों के राजहंस' में नंद और श्यामाँग, 'आधे-अधूरे' में महेन्द्रनाथ और सिंघानिया। लाल ने 'मिस्टर अभिमन्यु' में भी राजन और आत्मन की इसी कोटि में रचना की है। **दर्पन** में कभी तपेदिक के मरीज के रूप में, कभी दंडी के रूप में, कभी अनाम, अनजान 'एक आदमी' के रूप में चरित्रों द्वारा उस दर्पण (आईना) की प्रयुक्ति है जो पूर्वी के सामने पड़ते ही अतीत का बिम्ब दिखा जाते हैं। यही कारण है कि दुल्हन बनी पूर्वी दर्पण देखते ही चीख पड़ती है दर्पण में उसका आत्मसाक्षात्कार 'दर्पन' से होता है और वह

1. तनेजा जयदेव : समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र-सृष्टि : दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, वर्ष 1971, पृष्ठ—48.

अपने अंतिम प्रयास में भी हार जाती है। वह फिर पूर्वी से दर्पन बन कर ही नीचे उतरती है—— गेरूआ वस्त्र पहिने, मौन, अविचल। हरिपदम उसे इस रूप में भी स्वीकारने को तैयार है परन्तु दर्पन नहीं मानती, क्योंकि प्यार का आधार प्रेम है छल नहीं। वास्तव में दर्पन की पहचान बनाने के लिए पूर्वी के चरित्र की संयोजना अनिवार्य थी। इस नाटक में दोहरे चरित्र से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति के लिए 'दर्पन' जैसे मनोवैज्ञानिक चरित्र की रचना की गई है, जो नियति और प्रवृत्ति के बीच फंसी अपनी अभिशप्त नियति को भोगने के लिए विवश है। उसका खण्डित व्यक्तित्व ही उसके चरित्र की पहचान है।

सूर्यमुख के पात्र भी जीवन के विरोधाभासों और मानसिक संघर्षों की ऊहापोह में घिरे हुए हैं। प्राचीन परम्पराओं और नवीन जीवन-संदर्भों के बीच टकराहट, पारस्परिक जटिल सम्बन्ध, क्षुब्ध आक्रोश, संकुल मनःस्थितियां आदि को इस नाटक में कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है। फ्रायड मनोविज्ञान इंसानी मन में निषिद्ध-सम्भोग-ग्रन्थि और ईडिपस के टकराव द्वारा व्यक्तित्व को प्रभावित मानता है। **सूर्यमुख** में कृष्ण की पत्नी वेनुरती (अंतिमरानी) और प्रदुम्न (कृष्ण पुत्र) के बीच प्रेम के प्रसंग पर आधारित एक पौराणिक कथा को फ्रायडियन मनोविज्ञान की दृष्टि से आधुनिक संदर्भ में नाट्याभिव्यक्ति मिली है।

महाभारत के उपरान्त उत्पन्न स्थिति यह बनी कि विद्रोही युवा पीढ़ी, जिनका सबसे विरोध है परन्तु उस राजसत्ता या शक्तिसत्ता से नहीं जिसने उन्हें परस्पर गुटों में बांट कर युद्ध के लिए विवश किया है। सभी भोग-विलास और सुख-चैन में डूबे हैं और कृष्ण के हत्यारे जरा को अपनी शक्ति संधान का हेतु बनाना चाहते हैं। कालरूपी समुद्र क्रमशः द्वारिका को डुबोता जा रहा है। प्रदुम्न और बेनुरती का प्रेम इन सब स्थिति-परिस्थितियों के बीच दीपक की भांति अपना आलोक फैला रहा है। यहां इस नाटक का शीर्षक 'सूर्यमुख' प्रतीक रूप में आत्मसाक्षात्कार की स्थिति का द्योतक है। यह नाटक प्राचीन परम्पराओं, धार्मिक सामाजिक मान्यताओं को एक ओर जहां ठेस पहुंचाता है वहीं आधुनिक संदर्भ में उठे

प्रश्नों को भी उठाता है। जयदेव तनेजा के शब्दों में—— 'मन में धर्म भावना लेकर साहित्य का अध्ययन अथवा मूल्यांकन करना धर्म और साहित्य दोनों के प्रति अन्याय है। नाटक का मूल्यांकन वास्तव में नाटक में व्याप्त नाटकीय परिवेश और पात्रों के पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर ही होना चाहिए। किन्हीं बाह्य आरोपित आधारों पर नहीं।' फ्रायड का विचार है कि सारी मनुष्य जाति की अपराध-भावना, जो सारे धर्म और नैतिकता का मूल स्रोत है, इतिहास के आरम्भ में ईडीपस-ग्रन्थि के द्वारा ही प्राप्त की गई होगी। (फ्रायड मनोविश्लेषण, पृष्ठ 305) **सूर्यमुख** वास्तव में उस क्रान्ति का प्रतीक है जिसने प्रदुम्न और वेनुरती को लोक व्यवहार और परम्परा को अस्वीकार कर अपनी पहचान और प्रेम की सहज भावना के प्रति समर्पित हो हर खतरे से लड़ना सिखाया। मनुष्य के भीतर के डर ही उसे विवश करते हैं कृत्रिमता से जीने के लिए।

इस नाटक के सभी पात्र इतिहास प्रसिद्ध भूमिकाओं वाले हैं। नाटककार ने उन्हें मानवीय धरातल पर लाकर उनके व्यक्तित्व विघटन को ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर ही चित्रित किया है। चाहे कोई कितना भी महान क्यों न हो आखिर इंसान की भांति जियेगा। महानता व्यक्तित्व का एक पक्ष हो सकती है—— नियति नहीं। अन्ततः भगवान कहाए जाने वाले कृष्ण भी अपने व्यक्तित्व के विघटन और अभिशप्त नियति से नहीं बच सके। यह नाटक इस दृष्टि से जीवन-सत्यों को उजागर करने वाला एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

(iii) पौराणिक-अख्यानों से लिए गए मिथकीय पात्र :

लाल ने अपने नाटकों में पौराणिक आख्यानों से भी कथानक लिए हैं। इन कथानकों में आए कई चरित्रों के जीवन-संघर्षों को आज के संदर्भ से जोड़ा है। विगत को आगत से जोड़ने की यह कोशिश मिथकीय योजना कहलाती है, पौराणिक पात्रों को मिथक के रूप में चित्रित कर उन्हें आधुनिक प्रासंगिकता दी जाती है। कई नाटककारों ने इस प्रकार के प्रयोग किए हैं जैसे, मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन', रमेश बक्षी के

'देवयानी का कहना है,' शंकर शेष के 'एक और द्रोणाचार्य,' सत्यव्रत सिन्हा के 'कथा एक कंस की,' भीष्म साहनी के 'माधवी', सुरेन्द्र वर्मा के 'द्रौपदी' आदि नाटकों में। लाल ने भी इस प्रकार के कई प्रयोग अपने नाटकों में किए हैं।

सूर्यमुख में प्रदुम्न और वेनुरती के प्रेम-प्रसंग परम्परागत-पात्र-छवि को तोड़ते हैं। अभी तक महाभारत के महान योद्धाओं, महापुरुषों की छवि प्रेक्षक-पाठक के मन में स्थापित थी, उसे नाटककार ने बड़ी कलात्मकता से खण्डित किया है—— चाहे वह कृष्ण हों या प्रदुम्न, साम्ब, बभ्रु, अर्जुन, व्यास-पुत्र या रुक्मणी आदि। कृष्ण की सोलह हज़ार रानियों और इनके अतिरिक्त आठ पटरानियों (वेनुरती सहित) के दाम्पत्य सम्बन्धों को वेनुरती ने चुनौती दी है। वह स्वयं को केवल एक स्त्री और प्रदुम्न को केवल एक पुरुष भर मानती है। यही कारण है कि वह कृष्ण की अन्तिम रानी होते हुए भी एक साधारण मानवी के धरातल पर प्रदुम्न का प्रेम पाकर जीना चाहती है। यह उसकी सहज भावना है। दूसरी ओर रुक्मणी और कृष्ण पुत्र प्रदुम्न ने महल में पांव रखते ही रानी वेनुरती को देखा और उसका हो गया। प्रथम दर्शन का सहज आकर्षण दोनों को प्रेम के अटूट सम्बन्ध में बांध देता है। मंत्रविद्ध से दोनों एक दूसरे के लिए अपरिहार्य हो गए। उन्हें महसूस हुआ, जैसे वे युग-युगान्तर से एक दूसरे के लिए ही बने हैं और जन्म लेते रहे हैं। इस जन्म में वे विपरीत स्थितियों में अर्थात मां और पुत्र के रूप में इस संसार में आए हैं। मानवीय और सहज प्रेम को पाने के लिए दोनों को ही दण्डित होना पड़ता है। अर्थात्——वेनुरती को महल में रहकर प्रताड़ना, व्यंग्य और घृणा सहकर तथा प्रदुम्न को नागकुण्ड की पहाड़ियों में निर्वासित होकर। यहां तककि रुक्मणी भी स्वयं को उसकी जननी कहती है मां नहीं। वेनुरती को बार-बार अपने विपरीत सम्बन्धों की बात कांटे की तरह सालती है। वह सोचती है जन्म फिर होता है पर समाज हमारे जन्म के पहले ही हमारे सहज को विपरीत सम्बन्धों के कारागार में बन्दी कर देता है। इसलिए वह हमेशा भयभीत रहती है प्रदुम्न को लेकर। दूसरी ओर प्रदुम्न भी

भय एवं संशय से ग्रस्त रहता है। उसे लगता है जैसे उसके पिता कृष्ण का चेहरा अनायास ही उस मार्ग पर प्रकट हो जाता है जिस मार्ग से वह वेनुरती को मिलने जाता है। यही नहीं वह इस अपराध-बोध से भी ग्रस्त है कि उसके पिता कृष्ण उससे टूटकर निर्जन वन में 'आत्महत्या' करने गए होंगे। यहां कृष्ण की मृत्यु के लिए भी एक प्रश्न है कि वास्तव में जरा ने कृष्ण की हत्या की या ....? नाटककार ने प्रदुम्न और वेनुरती के प्रेम को उचित और धर्म-सम्मत सिद्ध करने के लिए कभी वृद्ध द्वारा गीत गवाया है—— 'कृष्ण तनय होई हैं पति तोरा, वचन अन्यथा होई न मोरा——' तो कभी दुर्गपाल से भी इस सम्बन्ध की प्रशंसा करवाई है। यहां यह भी दृष्टव्य है कि वेद, लोक और परिवार की रूढ़ियों को तोड़कर गोपी प्रणय करके कृष्ण ने पूर्व-मर्यादाओं का खण्डन किया था परन्तु बाद में कृष्ण ने अपनी क्रांति की इस प्रक्रिया को अक्षुण्ण बनाए रखने की मान्यता को अस्कीकार करके, पुनः धर्म, लोक-व्यवहार एवं परिवारों की रूप-रचना कर उसे शास्त्रीयता के बन्धन में बांधना चाहा। प्रदुम्न और वेनुरती के प्रेम को असहज माना और प्रदुम्न के शब्दों में कहें तो कृष्ण ने साधारण मनुष्य की तरह वेनुरती के लिए संघर्ष किया और ये सब किया उसी कृष्ण ने, जो भागवत प्रेम के प्रतीक थे।

नाटक के अन्त में भी रुक्मणी और अर्जुन वेनुरती के हाथ-पांव बांध कर जबरदस्ती द्वारिका से ले जाते हैं। वह विवश हो बार-बार उस सूरज को पुकारती है जो उसे इस अंधेरी कारा से मुक्त कर सके। उसे अपनी चिन्ता नहीं बल्कि यह चिन्ता है कि युद्ध से लौटने के बाद राजमहल में प्रदुम्न उसे न पाकर कितना दुखी होगा? उसका सारा भागवत प्रेम सेमल पुष्प की भांति बिखर जायेगा। हुआ भी यही। प्रदुम्न, वेनुरती को महल में न पाकर उस पर छल और विश्वासघात के आरोप लगाता है। वह विक्षिप्त सा हो उठता है। वह राजमुकुट को फेंक देता है और वेनुरती को खोज कर जब वास्तविकता से परिचित होता है तो उसके सारे संशय और द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं। प्रदुम्न उस अभिशप्त राज-मुकुट को अर्थहीन पर आकर्षक प्रतीक की तरह टूटी तलवार पर टांग देता

है। अन्त में सारी यदुस्त्रियाँ प्रदुम्न और वेनुरती के घायल और निश्चेष्ट शरीरों की परिक्रमा करके द्वारिका के पथ पर मुड़ जाती हैं।

प्रदुम्न और वेनुरती के अतिरिक्ति रुक्मणी तथा दुर्गपाल की भूमिकाएं भी इन दोनों 'चरित्रों के उद्घाटन विकास में सहायक हुई। सौतिया डाह से ग्रस्त रुक्मणी वेनुरती के साथ कभी भी सहज नहीं हो पाई इसका कारण प्रदुम्न से उसका प्रेम था। वह अपना सारा आक्रोश प्रदुम्न पर निकालती है। परन्तु अन्त में वह भी सत्य को पहचान स्वीकारती है—— 'सबकी अपनी-अपनी गीता है।' दुर्गपाल कहीं प्रदुम्न के आन्तरिक मन का बिम्ब है उसका सहायक है। लेखक की धारणाओं एवं मान्यताओं का वाहक है—दुर्गपाल। इसीलिए, द्वारिका के खण्डित नगर में केवल दुर्गपाल का अर्थ ही खण्डित नहीं होता। वभ्रु और साम्ब का चरित्र भी प्रदुम्न के बाहरी संघर्ष को प्रस्तुत करने के लिए प्रतिपक्षों की भांति रखा गया है। दोनों ही अपने आप को कृष्ण का पुत्र नहीं कहलवाना चाहते हैं। दोनों ही कृष्ण के हत्यारे जरा का वध अपने-अपने राजनैतिक उद्देश्यों के लिए करना चाहते हैं। वभ्रु स्वार्थी, क्रूर हिंसक और अविवेकी है। वह साम्ब को भी मारना चाहता है ताकि अकेला जरा का वध करके शक्ति-संधान का हेतु बन सके। वह अर्जुन से द्वारिका की असंख्य विधवाओं का पुर्नविवाह करने की बात करता है। उसे पिता कृष्ण से इसलिए भी घृणा है क्योंकि कृष्ण (एक व्यक्ति) की मृत्यु के बाद उसकी सारी रानियों को विधवा होना पड़ा। वह अपने पिता को श्रृंगारी व्यक्ति मानता है और यदु वंशियों की परम्पराओं, संस्कृति व इतिहास का मजाक उड़ाता है। अंत तक प्रदुम्न के विरुद्ध खलनायक की सी भूमिका निभाता हुआ प्रदुम्न और वेनुरती की मृत्यु का कारण भी बनता है। साम्ब का चरित्र वभ्रु में अधिक साफ़ और सशक्त है। साम्ब, आरम्भ में प्रदुम्न का विरोधी होता है। परन्तु धीरे धीरे यह विरोध भी संशय के दूर होते ही दूर हो जाता है। प्रदुम्न जानता है कि साम्ब उसका विरोधी तो हो सकता है परन्तु शत्रु नहीं। नाटक के अंत में प्रदुम्न द्वारा फेंके गए राजमुकुट को वह वेनुरती को सौंपता है। इसके लिए वह व्यास पुत्र

की हत्या भी करता है। यही नहीं वह प्रदुम्न को खोजने जंगल में भी जाता है। साम्ब का चरित्र प्रतीकात्मक है। प्रदुम्न और बेनुरती के मध्य वह 'कृष्णमुख' की भांति एक दृश्य रूप बन जाता है परन्तु जब साम्ब के सारे अन्तर्विरोध प्रदुम्न और बेनुरती के साथ दूर हो जाते हैं तो वह उनके मध्य नहीं आता और मंच से ही ओझल हो जाता है। इस नाटक में अर्जुन की निष्क्रिय भूमिका रही है। अभी तक उसे जिज्ञासु और संशय ग्रस्त रूप में जाना जाता रहा है जिसके सारे संशय कृष्ण ने दूर किए थे और बाद में उसने महाभारत लड़ा परन्तु **सूर्यमुख** में अर्जुन का निष्क्रिय रूप एक नये अर्जुन की सृष्टि करता है। वैसे भी कृष्ण की मृत्यु के बाद अब अर्जुन को अकेले ही अपनी सारी शंकाओं का समाधान ढूंढना होगा। इसलिए, वह हमेशा सोचता सा रहता है कुछ भी निर्णय नहीं कर पाता। कृष्ण, इस नाटक में कहीं नहीं हैं। उनकी हत्या हो चुकी है परन्तु जैसे उनका प्रभाव सारे नाटक पर छाया है। वास्तव में यह नाटक, गीता के महान संदेश, महाभारत में कृष्ण की भूमिका आदि प्रसंगों को मानवीय और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने को बाध्य करता है। लाल के इस प्रयास को भी उनके अन्य नाटकों की तरह महत्व प्राप्त है। इसके चरित्र निःसन्देह पौराणिक होते हुए भी खण्डित व्यक्तित्व और अभिशप्त नियति को झेलते हुए नजर आते हैं। मानवीय दुर्बलताओं और महानताओं के गुणों से रचे इन पात्रों का मनोविज्ञान बहुत ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत हुआ है।

मिस्टर अभिमन्यु नाटक में महाभारत कालीन वीर योद्धा अभिमन्यु के चरित्र को मिथ द्वारा आज के मनुष्य पर घटा कर उसकी जद्दोजहद को सार्थकता प्रदान की है। जिस प्रकार वीर अभिमन्यु अभेद्य चक्रव्यूह में घिर कर लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ था और इसीलिए उसकी मृत्यु को शहादत मिली। आज का व्यक्ति जिसे नाटककार ने 'मिस्टर अभिमन्यु' की संज्ञा दी है, उसके आसपास सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि व्यवस्थाओं का एक अभेद्य चक्रव्यूह बन गया है। इस व्यवस्था के चक्रव्यूह से वह उसी प्रकार जूझता है जिस प्रकार वीर अभिमन्यु जूझा था।

परन्तु, अन्तर केवल इतना है कि आज के व्यक्ति की मृत्यु को वीरगति' या 'शहादत' नहीं मिलती। इसका कारण नाटककार ने नाटक की भूमिका में स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि महाभारत कालीन अभिमन्यु वास्तव में उस चक्रव्यूह को तोड़ना चाहता था क्योंकि उसके सामने और कोई विकल्प नहीं था। इसलिए उसने अपनी मृत्यु की परवाह तक नहीं की और वह लड़ते-लड़ते निकलने की कोशिश में शहीद हो गया। परन्तु आधुनिक युग में आज का व्यक्ति चक्रव्यूह से मुक्त होने अथवा उसे तोड़ने के लिए मर-मिटने की नहीं ठानता। वह या तो घुटने टेक देता है या उसीका एक हिस्सा बन जाता है। इस समझौता-परस्ती के कारण उसे अपनी आत्मा का हनन भी करना पड़ता है। उसकी इस टूटन को इसीलिए 'वीरगति' या 'शहादत' नहीं कहा जा सकता। इसीलिए उसे 'वीर अभिमन्यु' न कहकर 'मिस्टर अभिमन्यु' नाम दिया गया है।

इस नाटक का केन्द्रीय पात्र है राजन। आत्मन और गयादत्त उसके आन्तरिक पक्षों को उद्घाटित करने वाली रचनात्मक और विनाशक शक्तियाँ हैं। प्रायः ऐसा होता आया है कि विनाशक शक्तियां बड़ी तेजी के साथ रचनात्मक शक्तियों पर आच्छादित हो उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर डालती हैं। बतौर इस नाटक के निर्देशक वीरेन्द्र नारायण के वक्तव्य के अनुसार गयादत्त जो राजन का ही एक रूप है वह आत्मन की हत्या कर देता है। वास्तव में हत्या राजन ही करता है क्योंकि गयादत्त और कोई नहीं राजन की विनाशक शक्ति ही है। आज का व्यक्ति इसलिए अपनी लड़ाई में ईमानदार नहीं रह पाता क्योंकि वह सुरक्षा और सुविधा का जीवन चाहता है जो उसे केवल गयादत्त के रूप में ही उपलब्ध हो सकता है। वास्तव में महाभारत के अभिमन्यु के सामने तो समष्टिगत एक महान् लक्ष्य था और इस के लिए वह निर्णय लेकर मर मिटने का संकल्प कर चुका था। परन्तु, आज का व्यक्ति जो व्यक्तिगत स्वार्थों की लड़ाई लड़ता है जिसका उद्देश्य केवल अपनी सुरक्षा और सुविधा तक ही सीमित होता है वह मर मिटने की अपेक्षा समझौता करके या उसी के अनुरूप बनकर जीना चाहता है। इस नाटक के अंत में, पार्टी के दृश्य में राजन का कथन कि 'अब मैं आपका

ही हूं'—— इसी बात का संकेत करता है। आम आदमी की सभी दुर्बलताओं से ग्रस्त आज का यह 'मिस्टर अभिमन्यु' लड़ता अवश्य है परन्तु यह लड़ाई केवल एक भ्रम मात्र है, अपने आप को साबित करने का एक भुलावा। इस नाटक में 'टूटा-खिलौना' राजन के खण्डित-व्यक्तित्व को प्रतीकात्मक अर्थ देने में सहायक हुआ है। इस नाटक के सारे पात्र प्रतीकात्मक हैं। राजन भीतर से आत्मन और गयादत्त है। राजन का अन्तर्द्वन्द्व आत्मन और गयादत्त की टकराहट है। राजन जब नौकरी में आया था तभी आत्मन से उसका साथ छूट जाता है। वह फिर से आत्मन बनना चाहता हैं परन्तु उसके भीतर का गयादत्त जो आत्मन की अपेक्षा अधिक सशक्त है—— आत्मन की हत्या कर देता है। क्योंकि, राजन अनिर्णय की स्थिति में घिरा रहता है परन्तु गयादत्त उसकी इस संशयग्रस्त स्थिति पर हावी हो जाता है क्योंकि गयादत्त उसे सुख-सुविधा और सुरक्षा प्रदान करता है।

मिस्टर अभिमन्यु, उर्फ़ राजन इसीलिए शहादत नहीं पाता क्योंकि यह उसकी अपनी लड़ाई थी, उसका अपना ही चक्रव्यूह था। राजन एक निरीह, शंकालु, मानसिक तनाव से ग्रस्त व्यक्ति है जो हर कीमत पर सुरक्षा का जीवन चाहता है। इसीलिए वह लड़ाई लड़ता अवश्य है परन्तु यह लड़ाई उसे मिटाती नहीं बल्कि बनाती है, सुरक्षा प्रदान करती है। वह जीवन के हर पक्ष को, हर पल को अपनी नहीं, दूसरों की इच्छानुसार जीता आया है। बचपन से ही पिता जी चाहते थे कि राजन कलक्टर बने, इसलिए वह कलक्टर बन गया। पत्नी विमल, जिस प्रकार का सुविधा जनक जीवन जीना चाहती है, राजन वही करता हैं। उसका अपना व्यक्तित्व नहीं है। महाभारतकालीन अभिमन्यु इसके विपरीत मां के गर्भ से ही चक्रव्यूह तोड़ने की अधूरी शिक्षा लिए पैदा हुआ था। वह अपने दृढ़ संकल्प और पराक्रम से चक्रव्यूह तोड़कर बाहर निकलना चाहता था। बाहर निकलने के लिए वह लड़ते-लड़ते मर भी गया। इसीलिए, उसकी मृत्यु 'वीरगति' कहलाई। राजन ने इसके ठीक विपरीत प्रत्येक स्थिति में समझौते की मुद्रा अपनाई है। वह इसलिए आत्मन की भी हत्या

कर देता है क्योंकि वह इस चक्रव्यूह में अपने आपको सुरक्षित बनाए रखना चाहता है और इसीलिए वह इससे बाहर भी नहीं निकलना चाहता। अपने जीवन की इसी अभिशप्त नियति को स्वीकार कर वह एक खण्डित व्यक्तित्व वाला, त्रासदी का हीरो अवश्य बनता है। लाल ने अपने इस नाटक में अभिमन्यु के मिथक द्वारा आज के मनुष्य की विडम्बना और त्रासदी को 'मिस्टर' शब्द द्वारा प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति दी है। यह प्रतीकात्मक पात्र सृष्टि अपनी रंग संभावनाओं में पूर्णतया पारदर्शी है।

यक्ष-प्रश्न नाटक का कथ्य आधुनिक-सन्दर्भ में, यक्ष-प्रश्न के पौराणिक सन्दर्भ द्वारा कुछ प्रश्नों के माध्यम से रचा गया है। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि समस्याओं से जूझते हुए आज का इंसान उसी तरह अपने आप को प्रश्नों के बीच घिरा पाता है जैसे चक्रव्यूह में अभिमन्यु और यक्ष के सन्मुख पांडव।

जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसे निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है क्योंकि—— जीवनस्रोत, समाज के कुछ लोगों के हाथों में फंस गए हैं। यह नाटक जीवनस्रोतों को प्राप्त करने के संघर्ष की उस शाश्वत समस्या की ओर ध्यान दिलाता है जो महाभारत कालीन पांडवों और यक्ष के बीच भी विद्यमान थी और आज के इंसान के सामने भी क्योंकि, सरोवर अर्थात् जीवनस्रोत हर युग में होते हैं, उसका स्वामी यक्ष भी है जो हर प्यासे को ललकारता है। हर युग में युधिष्ठिर अर्थात् जो चुनौती स्वीकार करता है, जीवनस्रोत को पाने के लिए संघर्ष करता है और अंतत अपनी प्यास बुझाता है। जो इस संघर्ष से पलायन करता है, वह मृत्यु को प्राप्त होता है।

यक्ष और युधिष्ठिर पौराणिक पात्र हैं जिनके माध्यम से आज के जीवन में समाए संघर्ष को नये रूप में अभिव्यक्ति मिली है। लाल ने यक्ष के प्रश्नों को समय की सीमा से निकाल कर उसे विराटता प्रदान की है। यक्ष रूपी काल किसी को नहीं छोड़ता। वह प्रश्नकर्त्ता है और हर युग का व्यक्ति उसके प्रश्नों का उत्तर देने के लिए बाध्य है। इससे संवादहीनता या पलायन, सिवाय मृत्यु के और कुछ नहीं देता। जीवित रहने के लिए

समय के प्रश्नों का उत्तर देना अनिवार्य है अन्यथा कालजल को पीकर मानव सदैव मूच्छित पड़ा रहेगा। इस नाटक में नाटककार ने यह भी बतलाया है कि एक युधिष्ठिर के उत्तर देने से सारे पांडव जीवित हो गए यदि, हर व्यक्ति में स्थित सभी पांडव उत्तर देंगे तो सारा समाज जीवित हो उठेगा। इसलिए सम्पूर्ण समाज को जीवित करने वाले प्रश्नों का उत्तर देना जरूरी है। इस प्रकार **यक्ष-प्रश्न** द्वारा उसकी शाश्वतता और मिथकीय आयाम को एक नई दिशा मिल सकी है।

इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं क्रमशः सहदेव, नकुल, भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर जिन्हें **मिस्टर अभिमन्यु** की तरह क्रमश, सहदेव शर्मा, नकुलसेन, भीमवर्मा, अर्जुनदेव और सत्यप्रिय के रूप में चित्रित किया गया है। सहदेववर्मा युवकों का नेता है जो हड़ताल, घेराव करवा के राजनैतिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है। राजनीति और शिक्षा संस्थाओं का गठबन्धन, विद्यार्थीवर्ग और शिक्षकवर्ग में आई दूरियों, वाइसचान्सलरों, नेताओं के ड्रामों, परीक्षाकेन्द्रों में नकल होने के कारणों, नम्बर लगवाए जाने के धंधों आदि को इस नाटक में बड़ी मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है।

नकुलसेन भी राजनीति में किसी से पीछे नहीं है। एक यूनियन से दूसरी यूनियन को तोड़ना, तोड़-फोड़ करना, हड़तालें करवाना, मिल मालिकों से मिलकर मजदूरों का शोषण करना आदि उसके व्यक्तित्व के पक्ष हैं।

नकुल सेन का पूरा पालन पोषण एवं सुरक्षा का भार अर्जुनदेव पर है। अर्जुनदेव मानव-अधिकारों का हन्ता है। वह इंसान को इंसान नहीं वोटर समझता है। उसकी दृष्टि में लोग भेड़ के समान हैं जिन्हें हांकने वाला चाहिए। वह हर चीज को बिकाऊ समझता है, पैसा उसके लिए सबसे बड़ी चीज़ है, काला धन उसकी ताकत है।

भीम वर्मा, प्रशासन में उच्चअधिकारियों को काबू में रखने के लिए कई-कई काले कारनामें करता है। अपनी कला-संस्थाओं में कई अवैध काम चला रखे हैं। इस प्रकार के लोगों का जिस समाज में बोलबाला होगा वहां आम आदमी के लिए जीवन जीना दूभर हो जायगा। ये वे यक्ष हैं

जिन्होंने आम आदमी के जीवन स्रोतों को कैद कर लिया है। समाज की सारी समस्याएं इन्हीं की दी हुई हैं। यदि कोई इनका विरोध करे तो ये उसका शिकार करते हैं: आज के इंसान के सामने अहम् मुद्दा है परिस्थितियों से परिचित होने का और उनके अनुरूप जद्दोजहद करने का। क्योंकि, इस संसार में प्रत्येक को अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं ही ढूंढना होगा। अपने उत्तरदायित्वों से भागने का अर्थ है उस अतीत में पहुंच जाना जहां एक बार पहले भी यक्ष को प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया था। इस प्रकार यह नाटक अतीत से वर्तमान को जोड़ता है।

यक्षप्रश्न नाटक में प्रतीकात्मक पात्रसृष्टि मिलती है। यक्ष, समय अर्थात् काल का प्रतीक है। हर काल की अपनी भूमिका होती है उसकी प्रासंगिकता होती है और होती हैं उसकी चुनौतियां। समय के आयाम से गुजरते हुए मनुष्य को इन चुनौती-प्रश्नों का उत्तर देना अनिवार्य है, नहीं तो उसका अस्तित्व-व्यक्तित्व खतरे में पड़ सकता है। काल या समय जो अमूर्त है—— उसे भी लाल ने यक्ष के माध्यम से ज़िन्दगी का एक जीवन्त सत्य बना दिया है। उसकी अमूर्त सत्ता को यक्ष के प्रतीक पात्र के रूप में कल्पना की गई है। निःसन्देह **यक्ष प्रश्न** नाटक चरित्र योजना में नाटककार की विलक्षण कल्पना-प्रतिभा का बेजोड़ उदाहरण है।

कथा विसर्जन में भी मां (दादी) का चरित्र मौन विद्रोह करते हुए बड़ा ही सशक्त बन पड़ा है। मां पुरानी पीढ़ी की प्रतीक तो है ही साथ ही भारतीय परम्परा, संस्कार-शीलता और सांस्कृतिक गरिमा को भी अपने चरित्र में धारण किए हुए है। यही कारण है कि उसके पोता-पोती आजकी तेज़ रफ्तार ज़िन्दगी की अंधी स्पर्धा में लगे अपने मां-बाप (प्रकाश और नीलम) से दूर होते जाते हैं और दादी की स्नेहिल छाया पाने के कारण उसके अधिक निकट हो जाते हैं। यह निकटता नीलम की सारी सख्तियों और कोशिशों के बावजूद बढ़ती जाती है और अंततः बच्चे अपनी परम्परागत मन्यताओं और संस्कृति के प्रति श्रद्धावान बन जाते हैं। यही नहीं प्रकाश के चरित्र में भी नाटककार ने अंत में परिवर्तन लाकर बच्चों और उनकी धारणाओं के साथ उसे जोड़ा है। इस नाटक में आए पात्र लाल

की धारणाओं के वाहक हैं। उनके परम्परागत संस्कारों को चरित्र के क्रिया कलापों के माध्यम से अभिव्यक्ति देते हैं।

राम की लड़ाई नाटक के पात्र भी रचनात्मक और ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों के वाहक हैं। इसके चरित्र भी लाल की धारणाओं को पूर्णतया वहन करते हैं। इस नाटक का प्रमुख पात्र है राम गुलाम जो अपने सशक्त एवं जीवन्त चरित्र से देश में फैली राजनैतिक, सामाजिक आदि दुर्व्यवस्थाओं का विरोध करते हुए संघर्ष करता है। यह वास्तव में नई पीढ़ी का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त त्रिमला, सरजू, शिवशंकर, रमई आदि सामन्य व्यक्तियों की भूमिकाएं निभाते हैं। इनकी रचना सृजनात्मक धरातल पर की गई है। दूसरी ओर चीलर, नेताई, गड़बड़ सिंह, साहजी आदि विरोधी पात्र हैं इनकी रचना विध्वंसात्मक प्रवृत्ति को उजागर करती है। इस नाटक में 'मसखरा' पात्र जो विदूषक की सी भूमिका निभाता है—— बड़ा ही रचनात्मक पात्र है। यह अपने हास्य-व्यंग्य के सहारे दूसरे पात्रों की दुर्बलताओं, कुंठाओं, विकृतियों को उघाड़ता है।

इस प्रकार डॉ लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने नाटकों में चरित्र-सर्जना में आज के मानव और उसके परिवेश को उजागर करने के लिए कहीं मिथकीय तो कहीं प्रतीकात्मक प्रयोग किए हैं। इनके पात्रों का चरित्र सामान्य, दुर्बल, महान अर्थात् हर प्रकार का है। यही कारण है कि इनके पात्र कहीं अच्छे चरित्रों के स्वामी हैं तो कहीं पलायन वादी। कहीं परिस्थितियां उनके ऊपर हावी हैं तो कहीं वे पूरे युग का प्रतिनिधित्व करने वाले। इनके नाटकों के कई पात्र संशयग्रस्त हो खण्डित व्यक्तित्व की त्रासद नियति को वहन करने वाले हैं तो कई सशक्त, जीवन्त, स्वसंचालित व्यक्तित्वों के मालिक। कहीं वे अपने जीवन-भंवर में फंसकर गुंजलकदार चरित्र बन गए हैं तो कहीं साफ-सुथरे और सपाट, द्वन्द्वहीन दिखाई देते हैं।

लाल ने अपने नाटकों में चरित्र योजना बड़े ही मनोयोग और सोच-समझ कर की है। वह अपने पात्रों को अपनी विशिष्ट धारणाओं का वाहक बनाते हैं। या यूं कह लें कि डॉ. लाल ने पात्रों के माध्यम से अपनी धारणाओं, विचारों, उद्देश्यों आदि को व्यक्त किया है। यही कारण है

कि उनके नाटकों के कई पात्र पौराणिक, ऐतिहासिक होते हुए भी आज के मनुष्य के जीवन की त्रासदियों, कुंठाओं, मुखौटाधर्मिता आदि को सशक्त अभिव्यक्ति देते हैं। इनके पात्र अपने विभिन्न रूपों में आज के व्यक्ति के जीवन-संघर्ष को उजागर करते हैं। उनका मानसिक तनाव आज की परिवेशगत विसंगतियों का परिणाम है।

वास्तव में, लाल ने अपने नाटकों में आज के व्यक्ति के जीवन की समस्त कुंठाओं, द्वन्द्वों, संघर्षों तथा मुक्तिप्रयासों को बड़े ही आशावादी-रचनात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है। वास्तव में, नाटककार का जीवन की विषम परिस्थितियों के विरुद्ध आशावादी स्वर, रचनात्मक शक्तियों का प्रचार-प्रसार, परम्परागत शाश्वत मूल्यों एवं भारतीय सांस्कृतिक गरिमा, उद्देश्यप्राप्ति के लिए रचनात्मक संघर्ष, जन चेतना आदि को अभिव्यक्ति मिली है। इनके नाटकों के पात्र अपने चारित्रिक प्रयोग में पूरी तरह सफल हैं।

भी है जो, राज्य-विस्तार का कार्य शिक्षा-संस्थानों में कर रहा है।

प्रह्लाद द्वारा जन-जागृति के प्रयास को देखकर हिरण्यकश्यप प्रह्लाद को पराजित करने के प्रयास करता है। कभी विषकन्या भेजता है तो कभी डुंडा द्वारा उसे मरवाना चाहता है। जन-कल्याण की भावना से जुड़ा निर्भीक प्रह्लाद इन परिस्थितियों के समक्ष डटकर खड़ा हो पलायन की बजाय संघर्ष करता है। वह हिरण्यकश्यप की हर नीति का सामना बड़ी निडरता से करता है। वह उसे समझाकर कहता है—देश प्रेम सर्वोच्च है। इसके सामने हम या हमारी इच्छाएं न्यून हैं। परन्तु हिरण्यकश्यप की समझ में कुछ नहीं आता। हां, इतना अवश्य होता है कि प्रह्लाद के समक्ष उसकी निरंकुशता कमजोर पड़ जाती है। यही कारण है कि वह अपने साथ हुतासन को मिलाता है ताकि हुतासन में विकसित होते 'नर' तत्व की हत्या कर उसे पुनः 'पशु' बना ले। इससे, सिंहासन की सुरक्षा भी होगी और प्रह्लाद की क्राँति भी सफल न हो सकेगी।

हिरण्यकश्यप, हुतासन को प्रह्लाद की हत्या करने के लिए प्रधानमंत्री बनाने का लालच देता है। इस सारी बात की जानकारी प्रह्लाद को होती है तथापि वह हुतासन पर विश्वास करता है। क्योंकि उसे मालूम है कि —"हुतासन की जीभ में सत्ता का खून नहीं लगा। मूल्यहीन शक्ति ही पशु है। जीवन-मूल्यों से जुड़ कर मनुष्य नरसिंह बनता है। निरंकुश राजा को अगर कोई एक मनुष्य मारेगा तो वह उसी तरह उसके सिंहासन पर बैठ जाएगा। इस सिंहासन के विनाश के भीतर से एक नया लोकतन्त्र उपजे, इसके लिए अनिवार्य है मनुष्य और पशु दोनों शक्तियां एक हों—नरसिंह।"[1]

उसका विश्वास उसके 'स्वधर्म' पर टिका है जिसमें कोई दोष नहीं और हुतासन भी अपने स्वधर्म–मानवधर्म प्रह्लाद के विश्वास, जीवन-मूल्यों, संघर्ष के महान उद्देश्य से जुड़कर नरसिंह का रूप धारण करके हिरण्यकश्यप का वध करता है। 'नर' एवं 'सिंह' शक्तियों का यह योग कोई वैरागी

1. लाल लक्ष्मीनारायण : नरसिंह : पृष्ठ—66

भी है जो, राज्य-विस्तार का कार्य शिक्षा-संस्थानों में कर रहा है।

प्रह्लाद द्वारा जन-जागृति के प्रयास को देखकर हिरण्यकश्यप प्रह्लाद को पराजित करने के प्रयास करता है। कभी विषकन्या भेजता है तो कभी डुंडा द्वारा उसे मरवाना चाहता है। जन-कल्याण की भावना से जुड़ा निर्भीक प्रह्लाद इन परिस्थितियों के समक्ष डटकर खड़ा हो पलायन की बजाय संघर्ष करता है। वह हिरण्यकश्यप की हर नीति का सामना बड़ी निडरता से करता है। वह उसे समझाकर कहता है—देश प्रेम सर्वोच्च है। इसके सामने हम या हमारी इच्छाएं न्यून हैं। परन्तु हिरण्यकश्यप की समझ में कुछ नहीं आता। हां, इतना अवश्य होता है कि प्रह्लाद के समक्ष उसकी निरंकुशता कमजोर पड़ जाती है। यही कारण है कि वह अपने साथ हुतासन को मिलाता है ताकि हुतासन में विकसित होते 'नर' तत्व की हत्या कर उसे पुनः 'पशु' बना ले। इससे, सिंहासन की सुरक्षा भी होगी और प्रह्लाद की क्राँति भी सफल न हो सकेगी।

हिरण्यकश्यप, हुतासन को प्रह्लाद की हत्या करने के लिए प्रधानमंत्री बनाने का लालच देता है। इस सारी बात की जानकारी प्रह्लाद को होती है तथापि वह हुतासन पर विश्वास करता है। क्योंकि उसे मालूम है कि —"हुतासन की जीभ में सत्ता का खून नहीं लगा। मूल्यहीन शक्ति ही पशु है। जीवन-मूल्यों से जुड़ कर मनुष्य नरसिंह बनता है। निरंकुश राजा को अगर कोई एक मनुष्य मारेगा तो वह उसी तरह उसके सिंहासन पर बैठ जाएगा। इस सिंहासन के विनाश के भीतर से एक नया लोकतन्त्र उपजे, इसके लिए अनिवार्य है मनुष्य और पशु दोनों शक्तियां एक हों—नरसिंह।"[1]

उसका विश्वास उसके 'स्वधर्म' पर टिका है जिसमें कोई दोष नहीं और हुतासन भी अपने स्वधर्म–मानवधर्म प्रह्लाद के विश्वास, जीवन-मूल्यों, संघर्ष के महान उद्देश्य से जुड़कर नरसिंह का रूप धारण करके हिरण्यकश्यप का वध करता है। 'नर' एवं 'सिंह' शक्तियों का यह योग कोई वैरागी

1. लाल लक्ष्मीनारायण : नरसिंह : पृष्ठ—66

लगना—— ये ऐसी कमियां हैं जो समय-समय पर उनके नाटकों के बारे में गिनायी जाती रही हैं। यही स्थिति उनकी नाट्यभाषा की भी है—— उसमें भी वह अन्तरंगता, विश्वसनीयता, भाषा, चरित्र, कथ्य, और मंच के स्तर पर नहीं दीखती जो नाटक में अनिवार्य होती हैं बल्कि कहीं-कहीं भाषा-प्रयोग बड़े असम्बद्ध, त्रुटिपूर्ण और चरित्र-विरोधी लगते हैं।"[1]

लाल ने अपने नाटकों में कथ्य एवं चरित्र के स्तर पर अनेक प्रयोग किए हैं। कथ्य के स्तर पर उनके नाटक पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक आदि आधारों पर रचे गए हैं। किन्तु आधार कुछ भी रहा हो वास्तव में मानव के अन्तर मन की सूक्ष्म गहराइयों और उनके आसपास को सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। आम आदमी की व्यथा-कथा नाटक की मूल विषय वस्तु रही है। इसी प्रकार, चरित्र में भी उन्होंने पात्र वैविध्य द्वारा आदर्शवादी, यथार्थवादी, रोमांटिक ऐतिहासिक-पौराणिक, मिथकीय जीवन्त-सशक्त व्यक्तित्वों के चित्रण के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी मानव के आन्तरिक और बाहरी व्यक्तित्व की परतों को खोलने का प्रयास किया है। जैसे सूर्यमुख, एक सत्य हरिश्चन्द्र, कलंकी आदि नाटकों में चरित्र-चित्रण बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है।

सन् 1960 के पश्चात् हिन्दी नाट्यलेखन में काफी प्रगति हुई। रंगमंच को एक दिशा मिली। जो शुरूआत जगदीश चन्द्र माथुर के कोणार्क मोहन राकेश के आषाढ़ का एक दिन से हुई थी उसी धारा के साथ-साथ लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक भी प्रयोगशीलता के आधार पर बड़ी तेजी से एक नया अध्याय निर्मित कर रहे थे। जिस समय हिन्दी में गिने चुने नाटक ही मिलते थे, लाल ने एक के बाद एक नाटकों की झड़ी सी लगा दी। थोड़े ही समय में उन्होंने बड़ी तेजी से अपने नाटकों की एक पर्याप्त संख्या से हिन्दी-नाट्य-जगत में उथल-पुथल मचा दी। हिन्दी नाटक और रंगमंच बड़ी तीव्रता से गतिशील हो उठा। उनके नाट्य-प्रयोगों द्वारा हिन्दी रंगमंच को एक नयी चेतना प्राप्त हुई। परन्तु, हिन्दी नाटक और

1. गिरीश रस्तोगी : समकालीन हिन्दी नाटक : पृष्ठ—16.

रंगमंच का इतिहास इस बात का भी साक्षी है कि बड़ी संख्या में नाटक लिखने से ही वह समृद्ध नहीं होता, इसके लिए नाट्य एवं रंग संभावनाओं से जुड़ी कई समस्याएं हैं जिनका निदान बहुत आवश्यक है। सेठ गोविन्द दास ने बहुत बड़ी मात्रा में एकांकी और नाटक लिखे परन्तु फिर भी एक सफल नाटककार के रूप में वे प्रतिष्ठित नहीं हो पाए। दूसरी ओर धर्मवीर भारती का काव्यनाटक **अंधायुग**, मोहन राकेश का **आषाढ़ का एक दिन** जैसे नाट्य प्रयोग ऐसे उदाहरण हैं जो हिन्दी साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य में प्रतिष्ठा पा चुके हैं। ठीक इसी प्रकार लाल के कुछ एक नाटक जैसे **मिस्टर अभिमन्यु, दर्पन, एक सत्य हरिश्चन्द्र, व्यक्तिगत** आदि ऐसी रचनाएं हैं जिनके प्रदर्शनों से हिन्दी नाट्य जगत को एक नयी दिशा मिली। उनके नाटकों का शैली-शिल्प उत्तरोत्तर निखरता गया है। एक प्रयोगशील नाटककार के रूप में वे चर्चित हो चुके हैं।

प्रयोग और प्रयोगशीलता :

'सत्य' को जानने हेतु किए गए परीक्षण **प्रयोग** कहलाते हैं। वैज्ञानिकों द्वारा किए जाने वाले परीक्षण तब तक किए जाते हैं जब तक सही परिणाम ज्ञात नहीं हो जाते। ये परीक्षण—— सत्य तक पहुंचने की विधि हैं। प्रयोग शब्द के बहुत से अर्थ हैं परन्तु नाटक के संदर्भ में इसका विशिष्ट अर्थ है—— अभिनय करना या नाटक खेलना। साथ ही प्रयोगशाला —— वह स्थान जहाँ पर किसी विषय का विशेषतः रासायनिक प्रयोग या जांच होती हो। अंग्रेजी में प्रयोग शब्द Experiment आदि के अर्थों में जाना जाता है और प्रयोगशाला को **लैबोरेटरी** कहा जाता है। ठीक इसी प्रकार नाटक जहां अभिनीत या मंचित किया जाता है उस जगह को रंगमंच और जिस भवन में वह स्थान होता है उसे **नाट्यशाला** अथवा **रंगशाला** आदि कहा जाता है।

वास्तव में, विज्ञान के प्रयोग और साहित्य में किए गए प्रयोग, लगभग समान हैं। इनकी समानता इस बात में है कि दोनों अर्थात् वैज्ञानिकों और साहित्यकारों द्वारा किए गए प्रयोगों का लक्ष्य, एक ही होता है——

विविधता द्वारा पूर्णता की ओर जाना। यह भी सच है कि किसी भी रूप में **पूर्णता** (Perfection) को पाया नहीं जा सकता, केवल उसके निकट तक प्रयोगों की प्रक्रिया द्वारा पहुंचा भर जा सकता है। प्रयोगों की यही प्रकिया वैज्ञानिक की खोज को सफल बनाती है और साहित्यकार को अभिव्यक्ति और शिल्प प्रदान करती है।

साहित्य की निरन्तर विकसित होती नव्यतर विधाएं इस बात की सूचक हैं कि अभिव्यक्ति के माध्यम से साहित्यकार कुछ नया कहना चाहता है। अभिव्यक्ति की तलाश और तराश के सफ़र में नये माध्यमों और साधनों की खोज ही नवीन विधाओं को जन्म देती है। **प्रयोगों** की भूमिका इस प्रक्रिया में सर्वोच्च होती है। साहित्यकार द्वारा ये प्रयोग—भाषा, वस्तु, शिल्प, शैली आदि के स्तर पर किए जाते हैं। आज का साहित्यकार भी अपनी रचना के कथ्य को सत्य और प्रामाणिकता के अधिक से अधिक नज़दीक लाने के लिए विज्ञान की ही टर्म्स में सोचने लगा है। इसीलिए आज का साहित्य जीवन-वास्तव से अधिक जुड़ा है। लाल ने भी अपने नाटकों के कथानकों, पात्रों, भाषा आदि को जनजीवन से जोड़ा है। इसके लिए उन्हें कई प्रकार के प्रयोग करने पड़े हैं। उनका प्रत्येक नाटक प्रयोगों की विविधता का उदाहरण है।

प्रयोग से ही **प्रयोगशीलता** बना है। नवीनता की खोज में निरन्तर किए गए प्रयोगों की प्रक्रिया ही प्रयोगशीलता है। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है——जैसे, नाटककार शूद्रक ने **मृच्छकटिकम्** में संस्कृतनाट्य परम्परा को परम्परागत धारणाओं और सिद्धान्तों को नकारा है और सर्वथा नए ढंग से नाटक की रचना की है। इसी प्रकार विशाखदत्त के **मुद्राराक्षस** में भी नाटककार ने **नेता** सम्बन्धी परम्परागत रूढ़ि को त्यागा है। **मृच्छकटिकम्** का कथ्य तत्कालीन सामाजिक संदर्भ को अभिव्यक्ति देता है जबकि उस समय प्रचलित नाटक के कथानक संबन्धी सैद्धान्तिक अवधारणा कुछ और थी। वास्तव में, परम्परा और नवीनता के बीच किए गए प्रयोगों या परिवर्तनों को प्रयोगशीलता कहा जा सकता है। ये ऐसे प्रयोग और परिवर्तन होते हैं जिनसे नवीनता की सर्जना होती है और नयी

दिशा दृष्टि मिलती है। अर्थ के संदर्भ में परिवर्धन होता है।

हिन्दी नाटककारों ने भी साहित्य की अन्य विधाओं की भांति कई कलात्मक नाटकों की सृष्टि की है। लाल ने भी अपने नाटकों में विविध प्रयोग कर के कथ्य एवं चरित्र आदि के स्तरों पर प्रयोगशीलता का परिचय दिया है। इनके द्वारा नाटकों में किए गए प्रयोगों को इस प्रकार देखा जा सकता है——

लाल के व्यक्तित्व में कई विविधताएं थीं। एक कुशल रंगकर्मी, नाट्य-समीक्षक, प्रयोगशील नाटकार, कवि, कहानीकार के रूप में उनका व्यक्तित्व उभर कर सामने आया। भारतीय इतिहास एवं पौराणिक कथाओं में दिलचस्पी, सांस्कृतिक चेतना, लोक नायक जयप्रकाश जी के व्यक्तित्व का प्रभाव, राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के प्रति पूरी सचेतता, मध्यवर्गीय सामाजिक-आर्थिक-मनोविज्ञान का स्वानुभव, लोक-कलाओं में रुचि, लोक-कथाओं-गीतों-धुनों एवं नाट्यशक्तियों के प्रति विशेष सम्मान, कर्मठ और जुझारू प्रकृति, संवेदनशील हृदय और इन सब से संचालित उनका व्यक्तिगत चिन्तन और उससे उपजा बोध ऐसे सत्य हैं जिन्हें नकारा नहीं जा सकता। लाल के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व में उनका स्वाभिमान भी बहुत अहम् भूमिका निभाता है। दिल्ली में रहकर उन्होंने महानगर की जिस ज़िन्दगी का साक्षात्कार किया उसकी टकराहट, जूझन को **व्यक्तिगत, अब्दुल्ला दीवाना, करफ्यू, मिस्टर अभिमन्यु** और **नरसिंह कथा** जैसे नाटकों में देखा जा सकता है।

व्यक्तिगत नाटक में महानगरीय बोध कथ्य के धरातल पर एक कलात्मक प्रयोग है। आज़ादी के बाद राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक आदि क्षेत्रों में उत्पन्न अराजकता ने देश की वर्तमान स्थिति को गुंजलकदार बना दिया है। इस स्थिति को इस नाटक में प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यक्ति दी गई है। 'मैं' केवल एक व्यक्ति विशेष नहीं बल्कि अराजकता को फैलाने वाली वह प्रवृत्ति है जो सिर्फ़ हड़पना जानती है। यह वह शक्ति है जो दूसरों का स्वत्व छीन कर खुद ताकतवर बनती है। गांवों में सरपंच, बड़े ज़मीनदार ही शोषक नहीं हैं बल्कि बड़े-बड़े महा-

नगरों में हड़पने की प्रवृत्ति अलग-अलग रूपों में फैली हुई है।

आज की यान्त्रिक सभ्यता में भारत के बड़े-बड़े महानगरों, जैसे बम्बई, कलकत्ता आदि में आदमी जिन विवशताओं और विसंगतियों में जीवन जी रहा है वह बहुत त्रासद स्थिति है। भीड़ में अकेलापन, परायापन, रहने के लिए आवास का अभाव, नौकरी कहीं, घर कहीं, टुकड़ों-टुकड़ों में बंटी, धक्के खाती, पिसती कुचलती ज़िन्दगी और भागमभाग के बीच आपाधापी, दंगे-फसाद, आगज़नी, लूटपाट, जुलूस-नारे, हड़तालें, स्ट्राइक, बंद और करफ्यू जैसी स्थितियों में से निरन्तर गुज़रते जाना। धूल-धुआं और अंधेरों के बीच आज की इंसानी ज़िन्दगी की तस्वीर कहीं बेहद भौंडी और कुरूप बन गई है। अमृतराय का इस सम्बन्ध में विचार उल्लेखनीय है—— 'आज हमारे सामने अपनी दुनिया की जो तस्वीर आ रही है वह शायद अकेले यन्त्रीकरण की नहीं, बल्कि उसके साथ ही पूंजीवादी अर्थतंत्र की भी देन है।'[1]

पूंजीपतियों द्वारा यन्त्रों को पोषण, औद्योगिक सफलताओं के लिए छोटे उद्यमियों को बाज़ार से हटाना, शेयर बेचकर दूसरों के धन का प्रबन्धकर्ता बनना, श्रम संघ को अपना बनाना, सामान्यजन की त्रासदपूर्ण स्थिति को जन्म देते हैं। **व्यक्तिगत** और **अब्दुल्ला दीवाना**, **करफ्यू** आदि नाटकों में इस सब का चित्रण कथ्य के धरातल पर हुआ है।

व्यक्तिगत का 'मैं' उस अधिकार अपहरण का प्रकटीकरण है जो हमेशा दूसरों पर छा जाता है। वह 'मैं' केवल 'लेना' जानता है 'देना' नहीं। 'मैं' बस हड़पना जानता है। 'मैं' राजशक्ति, धनशक्ति, अंधशक्ति तथा गुंडा बल आदि से युक्त है। मानवीयता का 'मैं' में नितान्त अभाव है। 'मैं' और 'वह' के चरित्र समान हैं। 'वह' 'मैं' द्वारा शोषित है। श्रीमान और श्रीमती आनन्द उन के जीवन मूल्यों के आदर्श हैं जिनसे 'मैं' बहुत दूर है। 'मैं' मि. मल्होत्रा का अनुगामी है और इसीलिए एक के बाद एक सफलता प्राप्त करता है। इस प्रकार, पूरा नाटक मैं, वह आदि सर्वनामों

1. अमृतराय : आधुनिक भाव बोध की संज्ञा : इलाहाबाद, हंस प्रकाशन 1972, पृष्ठ—15

से चलता है और घोषित करता है कि आज के युग में व्यक्ति का कुछ भी "व्यक्तिगत" नहीं है यहां तक कि उसका अपना नाम, अपनी पहचान, अपनी ज़िन्दगी भी अपनी नहीं है। अर्थात् कुछ भी व्यक्तिगत नहीं है। कथ्य एवं चरित्र के स्तर पर ये प्रयोग अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल कहा जा सकता है।

लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में किए गए प्रयोगों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि—— "हिन्दी नाटक में वह मुख्यतः प्रयोग वृत्ति; नवीन शिल्प और आधुनिक संवेदना लेकर आये—— कभी नाटक को प्रतीकात्मकता और मंचीय कुशलता से जोड़ कर (मादा कैक्टस), कभी मनोवैज्ञानिक और रंगमंचीय भूमि से जोड़कर (दर्पन), कभी सामाजिक समस्याओं, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों, बदलते जीवन मूल्यों को लेकर (करफ्यू, अब्दुल्ला दीवाना, व्यक्तिगत आदि), कभी मिथक को लेकर—— (कलंकी), कभी एब्सर्ड नाट्य परम्परा के निकट ले जाकर (काफी हाऊस में इन्तजार और सबरंग मोहभंग), कभी पौराणिक कथानकों और पात्रों को आधुनिक सन्दर्भ में प्रस्तुत करके (मिस्टर अभिमन्यु, यक्षप्रश्न, नरसिंह कथा आदि), कभी लघुनाटक की रचना करके (दूसरा दरवाजा, हाथी घोडा चूहा आदि), कभी काव्यनाटक के रूप में (सुन्दर रस, सूखा सरोवर), कभी लोकभूमि से जोड़कर (अंधाकुआं) और कभी लोक नाट्यशैली को प्रयोग करके (तोता मैना, एक सत्य हरिश्चन्द्र), कभी एकांकी की रचना करके कभी रेडियो नाटक की। ये सभी रचनाएं नाकटकार की प्रयोगशील वृत्ति को, उसकी दृष्टि, चिन्तन, मानवीय संवेदना तक उसकी पहुच, आधुनिक स्थितियों और विषयों के वैविध्य को और उनके माध्यम से हिन्दी नाटक और हिन्दी रंगमंच में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन—विषय और शिल्प दोनों स्तर पर लाने की सच्चाई को, उसकी आकुलता को उजागर करते हैं।"[1]

करफ्यू और **अब्दुल्ला दीवाना** में नाटककार ने परस्पर बदलते जीवन मूल्यों, पारिवारिक तथा दाम्पत्य सम्बन्धों में निरन्तर होता विघटन आदि को चित्रित करने के आधार पर प्रयोग किए हैं।

1. गिरीश रस्तोगी : समकालीन हिन्दी नाटककार : पू. उ. पृष्ठ-49

मादाकैक्टस की प्रतीकात्मक संवेदना नाट्य-कथ्य को एक नया आयाम देती है। वनस्पति शास्त्र की एक धारणा और कलाकार के मानसिक द्वन्द्व को एक साथ रख कर लाल द्वारा किया गया प्रतीकात्मक प्रयोग, बेहद सराहनीय है। नाटक का नाट्य एवं रंगशिल्प विषय-वस्तु की संवेदना से पूरी तरह जुड़ा है।

खण्डित व्यक्तित्व और अभिशप्त नियति को जीते भोगते **दर्पन के चरित्र** को मनोविज्ञान के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। दोहरे व्यक्तित्व की पीड़ा और पार्थिव-अपार्थिव के बीच डोलती दर्पन बनाम पूर्वी के मानसिक द्वन्द्व को मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषित किया गया है। एक ही पात्र के दो नाम रख कर खण्डित व्यक्तित्व को चित्रित किया गया है। निर्णय के अन्तिम क्षणों में दोनों में से सबल व्यक्तित्व जीतता है—— इसी को **दर्पन** नाटक में प्रतीकात्मक प्रयोग करके सिद्ध किया है।

दर्पन नाटक में कथ्य एवं चरित्र के धरातल पर जो प्रयोग किए गए हैं वे नितान्त मनोवैज्ञानिक हैं। खण्डित व्यक्तित्व एवं अभिशप्त नियति को भोगती 'दर्पन' पूर्वी बनना चाहती है परन्तु उसके भीतर और बाहर का सत्य जब भी (दर्पण को देखकर) एकाकार होता है वह फिर दर्पन बन जाती है। इस नाटक का शीर्षक **दर्पन** है। इस शव्द में 'न' नायिका के नाम को घोषित करता है जबकि 'दर्पण' शव्द में प्रयुक्त 'ण' अर्थात् 'आईना' आत्मसाक्षात्कार का वह प्रतीक है जो उसे उसका सही परिचय करवाता है। यही कारण है कि पूर्वी बनी नायिका 'दर्पण' (आत्मसाक्षात्कार) में स्वयं को देखते ही पुनः दर्पन (जो वास्तविकता है) बन जाती है। इस तरह लाल इस नाटक के प्रतीकात्मक प्रयोग में भी बहुत सफल रहे।

लाल ने अपने कई नाटकों में मिथकीय प्रयोग भी किए हैं। इन नाटकों में **कलंकी, मिस्टर, अभिमन्यु, यक्षप्रश्न, एक सत्य हरिश्चन्द्र, बलराम की तीर्थयात्रा, राम की लड़ाई, नरसिंह कथा** आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं। इन नाटकों की विषय-वस्तु पौराणिक धरातल से ली गई है। किन्तु, इन की पौराणिकता मिथकीय रूप में प्रयुक्त की गई है। वास्तव में आज की समस्याओं को विगत की समस्याओं के साथ जोड़ कर मिथकीय प्रयोग किये

गए हैं।

कलंकी में कलंकी-अवतार को जन शक्ति का प्रतीक मान कर हेरूप द्वारा स्वराज प्राप्ति के संघर्ष को मिथकीय प्रयोग द्वारा अभिव्यक्ति दी गई है। **कलंकी** और **सूर्यमुख** दोनों ही नाटकों पर एब्सर्ड नाट्य परम्परा तथा पश्चिम का प्रभाव देखा जा सकता है। **कलंकी** में लाल ने हेरूप जैसे पौराणिक पात्र के माध्यम से आधुनिक संवेदना की खोज की है। इस नाटक का रंग शिल्प आधुनिक रंग-संयंत्रों से युक्त है। इसके कोरस गायन में ग्रीक त्रासदियों की झलक मिलती है। तांत्रिक व रहस्यमय वातावरण बनाने के लिए प्रकाश और ध्वनि प्रभावों का कलात्मक प्रयोग मिलता है।

सूर्यमुख नाटक में फ्रायडियन मनोविज्ञान के ईडीपस काम्पलैक्स को आधार बना कर प्रदुम्न और वेनुरती के पौराणिक चरित्रों द्वारा अभिव्यक्ति दी है। कृष्ण की अन्तिम पटरानी वेनुरती और कृष्ण का बड़ा पुत्र प्रदुम्न (सौतेले मां और पुत्र) के बीच प्रेम प्रसंग और उससे उत्पन्न मानसिक तनाव को व्यक्त करने के लिए बादल और बिजली का शोर तथा तेज आंधी के ध्वनि प्रभावों का प्रयोग निःसन्देह इस नाटक के रंगशिल्प की विशिष्टता उजागर करता है। प्रदुम्न, नई पीढ़ी का प्रतीक, अग्निपुंज साक्षात् सूर्यमुख है जिसमें सम्पूर्ण पुरानी घिसी-पिटी परम्पराएं, नैतिक वर्जनाएं आदि जल कर राख हो गए हैं। लोक गीतों का प्रयोग कथा की संवेदना को गहराता है।

मिस्टर अभिमन्यु में राजन के माध्यम से आज के व्यक्ति और समाज के बीच जो खाई बढ़ रही है उसे अभिमन्यु की जद्दोजहद के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। राजन केवल व्यक्ति भी है और मिथक भी अर्थात् अतीत से वर्तमान तक चली आ रही कुपरम्परा का वाहक। जो अपने जीवन यथार्थ में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि व्यवस्थाओं के चक्रव्यूह में घिरा हुआ उसी प्रकार जूझ रहा है जैसे वीर अभिमन्यु। परन्तु, आज का व्यक्ति वीर अभिमन्यु की भांति कुव्यवस्था के इस चक्रव्यूह को तोड़ना नहीं चाहता बल्कि वह इसके अनुकूल बन कर

इन ताकतों से समझौता करके जीना चाहता है। इसके लिए उसे अपनी आत्मा (आत्मन) की हत्या करनी पड़ती है। इस हत्या के लिए उसे सेठ केजरी वाला की भांति बनना पड़ता है ताकि बदले में वह बंगला, गाड़ी, ऊंची कुर्सी पा सके। अपनी पत्नी और परिवारजनों के सपनों को पूरा कर सके। भले ही इस सबको करते-करते वह जीवित लाश ही क्यों न बन जाय। कठपुतलियों की भांति दूसरों के इशारों से संचालित होता रहे। इसीलिए इसकी लड़ाई को अभिमन्यु की लड़ाई से जोड़ कर इसे मिस्टर अभिमन्यु नाम दिया है।

अभिमन्यु के संघर्ष को उसके मिथकीय आयाम के माध्यम से जिस प्रकार इस नाटक में चित्रित किया है—— निःसन्देह कथ्य एवं चरित्र के स्तर पर एक सुन्दर प्रयोग है। इसी प्रकार **अब्दुल्ला दीवाना** और **करफ्यू** में भी महानगरीय जन जीवन को कथ्य के धरातल पर प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देकर लाल ने सुन्दर नाट्य संरचना की है।

यक्षप्रश्न नाटक में भी यक्ष और युधिष्ठर के पौराणिक प्रसंग को आधार बनाकर मिथकीय प्रयोग किया गया है। जलसरोवर को जीवन स्रोत के रूप में मानकर उस पर यक्ष जैसी शक्तिशाली ताकतों का कब्जा दिखाया है। पांचों पांडवों को भी भीमवर्मा, अर्जुनदेव, नकुलसेन, सहदेव शर्मा और युधिष्ठिर को सत्यप्रिय के रूप में उसी प्रकार मिथकीय प्रयोग द्वारा चित्रित किया है जैसे राजन को मिस्टर अभिमन्यु के रूप में। यह नाटक जीवन स्रोतों को प्राप्त करने के संघर्ष की उस शाश्वत समस्या की ओर संकेत करता है जो पौराणिक काल की है परन्तु वर्तमान समाज में भी जीवन स्रोत आम आदमी को सुलभ नहीं हैं क्योंकि उन पर समाज के कुछ शक्तिशाली लोगों का कब्जा है। जीवन स्रोतों को पाने के लिए यक्ष के प्रश्नों रूपी संघर्ष से गुज़रना अनिवार्य है नहीं तो पलायन से सिर्फ मृत्यु ही मिल सकती है। यह नाटक अपने मिथकीय संदर्भ में आधुनिक प्रासंगिकता को बेहद तीखेपन से उजागर करता है। लाल का यह नाट्य प्रयोग भी प्रशंसनीय है।

नरसिंह कथा भले ही सतयुग में घटित एक पौराणिक कथा है तथापि

यह आख्यान हमारे समाज में आज भी जीवित है। इस पौराणिक कथा को लगभग उसके मूलरूप में रखते हुए उसके अर्थ का विस्तार कई रूपों में किया है। आपातकाल और तानाशाह का प्रतीक हिरण्यकश्यप, तथा जनता की स्वतंत्र कामना का प्रतीक प्रह्लाद है। एक अर्थ में इसे असद् और सद् प्रवृत्तियों के संघर्ष के रूप में चित्रित करने के लिए, इनका मिथकीय प्रयोग किया है। नाटक के आरम्भ में ही जय-विजय के संवाद इसकी घोषणा करते हैं—— **नरसिंह कथा** : पृष्ठ 14-15)। एक ओर हिरण्यकश्यप जैसी निरंकुश, अमानवीय, शक्तिशाली ताकतें और दूसरी ओर प्रह्लाद समान बिल्कुल असहाय, साधनहीन मनुष्य का मुक्ति-संघर्ष।

पूरा नाटक इसी प्रकार की घटनाओं से जुड़ता 'नर' और 'सिंह' अर्थात् मानवी और पाशवी ताकत के संयोग से उत्पन्न होता है **नरसिंह**—— जो निरंकुश राजा (सत्ता) को मारकर (समाप्त कर) सुराज (लोकतंत्र) की स्थापना करेगा। इस पूरे प्रसंग को प्रह्लाद, हुतासन, कयाधु, जय, विजय आदि के माध्यम से रचा गया है और 'नरसिंह' का मिथकीय प्रयोग आज के संदर्भों से जोड़कर किया है। यह नाटक इस दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस की आधुनिक प्रासंगिकता ही कथ्य के धरातल पर किया गया लाल का मिथकीय नाट्य-प्रयोग है।

गंगामाटी में अपनी परम्पराओं से जुड़ कर तथा झूठे आकर्षणों और अंधविश्वासों को त्याग कर जीवन को सही अर्थों में किस प्रकार जिया जाय —— को देवल और कमल दो भाइयों के माध्यम से दर्शाया गया है। अपनी पहचान पाने के लिए कमल शहर की ओर जाता है और देवल बलि देने में असफल होकर जंगल का रुख बनता है। जंगल से लौटा देवल पिता द्वारा अर्थप्राप्ति का साधन बन जाता है लेकिन देवल पिता द्वारा दी गई जिन्दगी को जीना नहीं चाहता। वह बहुत जल्दी उस असहनीय और कृत्रिम जीवन से ऊब जाता है और गांव वालों के सामने अपनी असलीयत को व्यक्त कर देता है। 'यही नहीं, कमल को भी शहरी जिन्दगी का मोह भंग होने पर और- 'गांव बुलाता है' की भावना से वापस लौटना पड़ता है। दोनों भाई अब जान जाते हैं कि उनकी स्वयं की वास्तविकता क्या है।

गंगा दोनों भाइयों को बार-बार सचेत करती है। उसका यह संवाद —— "जो है उसे अस्वीकार करना, नहीं देखना, जो नहीं है, उसे पाने की कोशिश"[1] ——करने वाली प्रवृत्ति पर चोट करती। वह उन्हें उनकी असलीयत से परिचित करवाना चाहती परन्तु दोनों भाई जैसे उसे कुछ समझते ही नहीं। गंगा नहीं चाहती कि वे भटकें। वह उन की भटकने की प्रवृत्ति पर चोट करते हुए कहती है—— 'तुम दोनों भाई वही बनना चाहते हो, जो तुम्हारे पिता हैं। एक पहुंचा श्मशान, दूसरा हर काम उनके विरोध में करता है।"[2]

नाटक के अंत में देवल और कमल तथा गांव के लोग गंगा के साथ 'जिया हो' पूजा में शामिल होते हैं। वे 'जिया हो' का सही अर्थ 'जिया हो ....जिया हो... ....' समझ गए हैं। इस जीवन को सही अर्थ देने के लिए, आडम्बरों- मुखौठों का त्याग कर——"जीवन को जीवन से जोड़ना होगा।"[3]—— के सिद्धान्त से परिचित होते हैं। सारे पात्र मानव जीवन की सहजता के पोषक है। लाल का यह नाट्य प्रयोग भी कलात्मक है। **सगुन पंछी** नाटक में पात्र-परिकल्पना के नवीन रूप के दर्शन होते हैं। इसमें चरित्र के धरातल पर प्रयोग किया गया है। एक ओर जंगल के पक्षी जैसे—— तोता, मैना, नीलकण्ठ आदि और राजा रानी, गंगा, पंचम, वृद्ध, प्रेत, मन्त्री आदि। पक्षी पात्रों के माध्यम से स्त्री-पुरुष के सनातन सम्बन्धों, संघर्ष एवं एकता को संवादों के माध्यम से कहानी का रूप दिया है।

इसने कहीं-कहीं गीतों का प्रयोग भी किया है। एक मसखरा नामक पात्र नाटक के अन्य पात्रों के विषय में हास्य के माध्यम से जानकारी देता है। इसी के समानान्तर मानवी पात्र हैं जो मनुष्य के सभी अवगुणों, कुंठाओं आदि से भरे हैं। एक दूसरे पर शक, अविश्वास करना और

---

1. लाल : गंगामाटी : पीताम्बर बुक डिपो : पृष्ठ—22
2. वही : पृष्ठ—27
3. वही : पृष्ठ—94

अपने अंतिम प्रयास में भी हार जाती है। वह फिर पूर्वी से दर्पन बन कर ही नीचे उतरती है—— गेरूआ वस्त्र पहिने, मौन, अविचल। हरिपदम उसे इस रूप में भी स्वीकारने को तैयार है परन्तु दर्पन नहीं मानती, क्योंकि प्यार का आधार प्रेम है छल नहीं। वास्तव में दर्पन की पहचान बनाने के लिए पूर्वी के चरित्र की संयोजना अनिवार्य थी। इस नाटक में दोहरे चरित्र से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति के लिए 'दर्पन' जैसे मनोवैज्ञानिक चरित्र की रचना की गई है, जो नियति और प्रवृत्ति के बीच फंसी अपनी अभिशप्त नियति को भोगने के लिए विवश है। उसका खण्डित व्यक्तित्व ही उसके चरित्र की पहचान है।

सूर्यमुख के पात्र भी जीवन के विरोधाभासों और मानसिक संघर्षों की ऊहापोह में घिरे हुए हैं। प्राचीन परम्पराओं और नवीन जीवन-संदर्भों के बीच टकराहट, पारस्परिक जटिल सम्बन्ध, क्षुब्ध आक्रोश, संकुल मन: स्थितियां आदि को इस नाटक में कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है। फ्रायड मनोविज्ञान इंसानी मन में निषिद्ध-सम्भोग-ग्रन्थि और ईडिपस के टकराव द्वारा व्यक्तित्व को प्रभावित मानता है। **सूर्यमुख** में कृष्ण की पत्नी वेनुरती (अंतिमरानी) और प्रदुम्न (कृष्ण पुत्र) के बीच प्रेम के प्रसंग पर आधारित एक पौराणिक कथा को फ्रायडियन मनोविज्ञान की दृष्टि से आधुनिक संदर्भ में नाट्याभिव्यक्ति मिली है।

महाभारत के उपरान्त उत्पन्न स्थिति यह बनी कि विद्रोही युवा पीढ़ी, जिनका सबसे विरोध है परन्तु उस राजसत्ता या शक्तिसत्ता से नहीं जिसने उन्हें परस्पर गुटों में बांट कर युद्ध के लिए विवश किया है। सभी भोग-विलास और सुख-चैन में डूबे हैं और कृष्ण के हत्यारे जरा को अपनी शक्ति संधान का हेतु बनाना चाहते हैं। कालरूपी समुद्र क्रमशः द्वारिका को डुबोता जा रहा है। प्रदुम्न और बेनुरती का प्रेम इन सब स्थिति-परिस्थितियों के बीच दीपक की भांति अपना आलोक फैला रहा है। यहां इस नाटक का शीर्षक 'सूर्यमुख' प्रतीक रूप में आत्मसाक्षात्कार की स्थिति का द्योतक है। यह नाटक प्राचीन परम्पराओं, धार्मिक सामाजिक मान्यताओं को एक ओर जहां ठेस पहुंचाता है वहीं आधुनिक संदर्भ में उठे

नाटक में पात्रों की नाटकीय और मनोवैज्ञानिक भूमिका कथ्य को सशक्त बनाती है।

कथाविसर्जन शीर्षक ही अपने प्रतीकार्थ में करुणा जनक प्रभाव की सर्जना करता है। प्रकाश और नीलम का भौतिकतावादी और सुविधा भरा जीवन तथा अर्थ प्रधान दृष्टिकोण कहीं उनको इतना रूखा बना देता है कि अपने बच्चों तक के लिए समय नहीं रह पाता। दूसरी ओर मां के रूप में दादी की निकटता और आत्मीयता को पाकर बच्चे पुनः अपने अतीत के संस्कारों परम्पराओं के प्रति श्रद्धावान बन जाते हैं परन्तु बच्चों की मां नीलम को यह कतई पसन्द नहीं। सुविधाभोगी सम्पन्न जीवन की इच्छा रखने वाली नीलम—— मां को भी प्रकाश की पदोन्नति का माध्यम बनाती है। इन सब के बीच मां का मौन विद्रोह उसे अंत में मृत्यु देता है। नाटक के अन्त में प्रकाश अपने जीवन के सही अर्थों को पहचान कर सरकारी नौकरी का त्याग कर देता है और अपने बच्चों के साथ सहज और वास्तविक जीवन जीने को तत्पर होता है। इस नाटक में नाटककार लाल के अपने जीवन विश्वासों और धारणाओं को कथ्य एवं चरित्र के धरातल पर प्रयोगात्मक अभिव्यक्ति मिली है।

राम की लड़ाई नाटक में वर्गगत चरित्रों के माध्यम से देश में फैली दुर्व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है। इस नाटक का प्रमुख पात्र रामगुलाम स्वाधीनता प्राप्ति के बाद पैदा होने वाली नई पीढ़ी का प्रतिनिधि पात्र है। उसके चरित्र में सच्चाई, आत्म विश्वास एवं भ्रष्ट परिवेश से संघर्ष करने की शक्ति है। नाटक में चित्रित अन्य पात्र जैसे विमला, सरजू शिवशंकर रमई आदि सामान्य पात्र तो हैं ही— नेताई, गड़बड़ सिंह, साहजी, जैसे शोषक और विनाशकारी शक्तियों को वहन करने वाले पात्र भी हैं। ये केवल उपलब्धि देखते हैं, प्रयास और परिश्रम नहीं। इनकी नज़र हमेशा मौका से फायदा उठाने पर रहती है।

मसखरा —— विदूषक की भूमिका निभाता अपने हास्य और व्यंग्य के माध्यम से दूसरे पात्रों की चारित्रिक दुर्बलातओं को उघाड़ता है। यह सारा नाटक स्वातंत्र्योत्तर भारतीय वातावरण को व्यंग्यात्मक स्तर पर

भी है जो, राज्य-विस्तार का कार्य शिक्षा-संस्थानों में कर रहा है।

प्रह्लाद द्वारा जन-जागृति के प्रयास को देखकर हिरण्यकश्यप प्रह्लाद को पराजित करने के प्रयास करता है। कभी विषकन्या भेजता है तो कभी डुंडा द्वारा उसे मरवाना चाहता है। जन-कल्याण की भावना से जुड़ा निर्भीक प्रह्लाद इन परिस्थितियों के समक्ष डटकर खड़ा हो पलायन की बजाय संघर्ष करता है। वह हिरण्यकश्यप की हर नीति का सामना बड़ी निडरता से करता है। वह उसे समझाकर कहता है—देश प्रेम सर्वोच्च है। इसके सामने हम या हमारी इच्छाएं न्यून हैं। परन्तु हिरण्यकश्यप की समझ में कुछ नहीं आता। हां, इतना अवश्य होता है कि प्रह्लाद के समक्ष उसकी निरंकुशता कमजोर पड़ जाती है। यही कारण है कि वह अपने साथ हुतासन को मिलाता है ताकि हुतासन में विकसित होते 'नर' तत्व की हत्या कर उसे पुनः 'पशु' बना ले। इससे, सिंहासन की सुरक्षा भी होगी और प्रह्लाद की क्राँति भी सफल न हो सकेगी।

हिरण्यकश्यप, हुतासन को प्रह्लाद की हत्या करने के लिए प्रधानमंत्री बनाने का लालच देता है। इस सारी बात की जानकारी प्रह्लाद को होती है तथापि वह हुतासन पर विश्वास करता है। क्योंकि उसे मालूम है कि —"हुतासन की जीभ में सत्ता का खून नहीं लगा। मूल्यहीन शक्ति ही पशु है। जीवन-मूल्यों से जुड़ कर मनुष्य नरसिंह बनता है। निरंकुश राजा को अगर कोई एक मनुष्य मारेगा तो वह उसी तरह उसके सिंहासन पर बैठ जाएगा। इस सिंहासन के विनाश के भीतर से एक नया लोकतन्त्र उपजे, इसके लिए अनिवार्य है मनुष्य और पशु दोनों शक्तियां एक हों—नरसिंह।"[1]

उसका विश्वास उसके 'स्वधर्म' पर टिका है जिसमें कोई दोष नहीं और हुतासन भी अपने स्वधर्म–मानवधर्म प्रह्लाद के विश्वास, जीवन-मूल्यों, संघर्ष के महान उद्देश्य से जुड़कर नरसिंह का रूप धारण करके हिरण्यकश्यप का वध करता है। 'नर' एवं 'सिंह' शक्तियों का यह योग कोई वैरागी

1. लाल लक्ष्मीनारायण : नरसिंह : पृष्ठ—66

हाउस में इन्तजार' उनका एब्सर्ड नाटक कहा जा सकता है जिसमें जीवन में व्याप्त विसंगति और विडम्बना का कुछ पात्रों की सुन्दर कल्पना से चित्रण किया गया है। ये लघु नाटक हिन्दी रंगमंच पर बहुत प्रसिद्ध भी हुए।"[1]

डा. लाल के केवल नाटकों में ही नहीं अपितु उनके कई एकांकियों में भी भाषा, शिल्प, कथ्य, आदि के धरातल पर कलात्मक प्रयोग मिलते हैं। उनके एकांकी संग्रहों जैसे, **नाटक बहुरूपी, नाटक बहुरंगी** में विविध प्रयोग मिलते हैं। बसन्त ऋतु का नाटक, अप्रासंगिक, परिचय आदि एकांकी शिल्प एवं कथ्य की दृष्टि से सार्थक प्रयोग हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि—— उन्होंने अपने नाटकों में प्रतीकात्मक प्रयोग बहुत किए हैं। प्रतीकों के माध्यम से मानव मन की गहराइयों, जीवन यथार्थ की कुरूपताओं को बड़ी कलात्मकता से अभिव्यक्ति दी है।

लोक-नाट्यशैलियों पर आधारित नाटकों में **तोता मैना** (सगुनपंछी), अंधाकुआं, एक सत्य हरिश्चन्द्र आदि हैं। जिस समय हिन्दी नाट्य जगत में लोक नाट्य, लोक शैली, लोकमंच आदि का व्यवहार-प्रचार-प्रसार आरम्भ नहीं हुआ था उस समय भी डा. लाल का उर्वरक और प्रयोगधर्मी मानस **तोता मैना** नाटक की सर्जना कर चुका था। यह नाटक लोक नाट्य रूढ़ियों के आधार पर लोक कथा को बड़ी सहजता से मंच पर प्रस्तुत करता है। बाद में इसी में आवश्यक सुधार और संशोधन व परिवर्धन करके **सगुन पंछी** के रूप में प्रकाशित किया।

अंधाकुआं में भी लोक-जीवन को आधार बना कर मार्मिक और कलात्मक चरित्र योजना मिलती है। इस नाटक में भी लाल ने बाद में आवश्यक सुधार-परिष्कार करके नया संस्करण निकाला। यह नवीन संस्करण लोक नाट्यशिल्प और लोकमंच के स्वरूप पर आधारित है। इसमें प्रयुक्त लोक धुनें, कथाकार और मंच पर बैठी संगीत पार्टी द्वारा कथागायन आदि प्रयोगों द्वारा इस नाटक की विषय वस्तु को सम्प्रेषणीय बनाया है।

1, समकालीन हिन्दी नाटककार : पू. उ. पृष्ठ—56-57

एक सत्य हरिश्चन्द्र में भी डॉ. लाल ने लोक नाट्य शैली का प्रयोग किया है। इस नाटक में प्रयुक्त गीत एवं धुने विशिष्ट प्रभाव अत्पन्न करने में समर्थ हुए हैं। इसी प्रकार **कलंकी** नाटक में भी पाश्चात्य ग्रीक-नाट्य शैली का प्रभाव मिलता है। कोरसगायन के समान ही इसमें तांत्रिक वातावरण बनाने के लिए प्रयोग मिलता है। **सूर्यमुख** नाटक में भी लोक-गीतों के समान ही गीत का प्रयोग कथा की संवेदना से जुड़ा है। वास्तव में डॉ. लाल एक प्रयोगशील नाटककार थे जो समय और प्रयोगों के प्रति हमेशा सचेत रहे।

भी है जो, राज्य-विस्तार का कार्य शिक्षा-संस्थानों में कर रहा है।

प्रह्लाद द्वारा जन-जागृति के प्रयास को देखकर हिरण्यकश्यप प्रह्लाद को पराजित करने के प्रयास करता है। कभी विषकन्या भेजता है तो कभी डुंडा द्वारा उसे मरवाना चाहता है। जन-कल्याण की भावना से जुड़ा निर्भीक प्रह्लाद इन परिस्थितियों के समक्ष डटकर खड़ा हो पलायन की बजाय संघर्ष करता है। वह हिरण्यकश्यप की हर नीति का सामना बड़ी निडरता से करता है। वह उसे समझाकर कहता है—देश प्रेम सर्वोच्च है। इसके सामने हम या हमारी इच्छाएं न्यून हैं। परन्तु हिरण्यकश्यप की समझ में कुछ नहीं आता। हां, इतना अवश्य होता है कि प्रह्लाद के समक्ष उसकी निरंकुशता कमजोर पड़ जाती है। यही कारण है कि वह अपने साथ हुतासन को मिलाता है ताकि हुतासन में विकसित होते 'नर' तत्व की हत्या कर उसे पुनः 'पशु' बना ले। इससे, सिंहासन की सुरक्षा भी होगी और प्रह्लाद की क्राँति भी सफल न हो सकेगी।

हिरण्यकश्यप, हुतासन को प्रह्लाद की हत्या करने के लिए प्रधानमंत्री बनाने का लालच देता है। इस सारी बात की जानकारी प्रह्लाद को होती है तथापि वह हुतासन पर विश्वास करता है। क्योंकि उसे मालूम है कि —''हुतासन की जीभ में सत्ता का खून नहीं लगा। मूल्यहीन शक्ति ही पशु है। जीवन-मूल्यों से जुड़ कर मनुष्य नरसिंह बनता है। निरंकुश राजा को अगर कोई एक मनुष्य मारेगा तो वह उसी तरह उसके सिंहासन पर बैठ जाएगा। इस सिंहासन के विनाश के भीतर से एक नया लोकतन्त्र उपजे, इसके लिए अनिवार्य है मनुष्य और पशु दोनों शक्तियां एक हों—नरसिंह।''[1]

उसका विश्वास उसके 'स्वधर्म' पर टिका है जिसमें कोई दोष नहीं और हुतासन भी अपने स्वधर्म–मानवधर्म प्रह्लाद के विश्वास, जीवन-मूल्यों, संघर्ष के महान उद्देश्य से जुड़कर नरसिंह का रूप धारण करके हिरण्यकश्यप का वध करता है। 'नर' एवं 'सिंह' शक्तियों का यह योग कोई वैरागी

1. लाल लक्ष्मीनारायण : नरसिंह : पृष्ठ—66

कई प्रकार के शब्द, मुहावरे, गीत तथा नामों इत्यादि में ग्रामीण परिवेश मुखर हो उठा है।

दर्पन की भाषा पात्रों के मनोभावों और उनकी स्थिति के अनुरूप है। विशेषकर पूर्वी की भाषा उसके व्यक्तित्व को और भी निखार देती है पर कहीं-कहीं उसकी अतिरंजिता भी प्रकट हो जाती है। उसका 'दिले' संबोधन अनाटकीय और बड़ा अटपटा सा लगता है। नाटककार ने शायद कोई भाषागत नाट्य-प्रयोग इस शब्द द्वारा किया है। बीच-बीच में हरिपदम के लम्बे-लम्बे संवाद पूर्वी के जीवन के इतिहास तथा परस्पर सम्बन्धों को प्रकाशित करते हैं। पूर्वी के जीवन का अतीत इस नाटक में पृष्ठभूमि बन कर पात्रों के संवादों द्वारा समय-समय पर अभिव्यक्ति पाता है। नाटक के आरम्भ में ही आधुनिक पीढ़ी के पुत्र और बूढ़े पिता के परस्पर सम्बन्धों का उनके संवादों के माध्यम से बड़ा सुन्दर चित्र उपस्थित हो जाता है। जहां अत्यधिक क्रोध तथा आवेश की स्थिति है वहां पात्रों के संवाद छोटे-छोटे हैं, जैसे— सुजान और पिताजी का यह संवाद :—

सुजान : जी हां, मैं आपके घर में कोई बंदी नहीं हूं।

पिताजी : क्या कहा? मैं कहता हूं, चुपचाप अन्दर चलो और अपनी खाट पर जाकर लेटो।

सुजान : मैं रोगी नहीं हूं।

पिताजी : फिर क्या हो तुम?

सुजान : एक स्वस्थ इंसान।

पिताजी : क्या कहा?

सुजान : मैं रोगी नहीं, आदमी हूं।

पिताजी : क्या?

सुजान : रोगी नहीं हूं मैं।

पिताजी : फिर क्या है तू।

सुजान : आदमी!

पिताजी। (सक्रोध) लंगड़ा! मरीज! तू मुझसे इस तरह की बातें करने चला है?

(**दर्पन** : पृष्ठ—56)

इस प्रकार की संवाद योजना नाट्य संघर्ष एवं तनाव को गहराती है।

सुन्दररस में प्रयुक्त भाषा पात्रानुरूप कही जा सकती है। **सूखासरोवर** में आज देश के जीवनरूपी सरोवर के सूख जाने की प्रतीकात्मक व्यंजना है। इस का कथानक लोककथा पर आधारित है। पात्र व घटनाएं काल्पनिक हैं। इसे गीतिनाट्य शैली में लिखा गया है। मुक्त छंद, संगीत और लोकगीतों के माधुर्य से इसकी भाषायी संरचना की गई है। इसी प्रकार **नाटक तोता मैना** जिसे अब **सगुन पंछी** के रूप में छापा गया है— भी विशुद्ध लोकतत्त्व पर आधारित है। इसमें प्रयुक्त गीत, भाषा, संवाद आदि लोक-तत्त्व की मनोहरता से युक्त हैं। इसमें प्रयुक्त तोता-मैना के संवाद बहुत सुन्दर हैं। तोता सूत्रधार की भूमिका में कहता है :

दिल वालो ! खेल वालो/
लगा दो ताम झाम शुरू हो अपना काम।

इसी में मसखरा नामक पात्र के संवाद भी बड़े कलात्मक हैं। इसका एक उदाहरण है :

मसखरा : त्रिया चरित्र जाने नहीं कोय।
खसम मारि के सत्ती होय ।।
भूल गई है नारि आन कै आनै कीन्हा।
कातै मोटा सूत कातन को चाहै झीना ।।
देय महावर आंख पैर में कजरा लावै।
ऐसी भोली नारि ताहिका को समुझावै ।।

(**सगुन पंछी** : पृष्ठ 44-45)

इसी नाटक के अंत में प्रयुक्त एक समूहगीत 'भरत वाक्य' या शिक्षा के रूप में यूं उभरता है :

तोता-मैना की हुई जैसे मुराद पूरी
ईश्वर आप सबकी करे वैसे ही मुराद पूरी
यहां न पुरुष बड़ा, यहां न नारि बड़ी
दोनों हैं रथ की धूरी।

इस नाटक में तोता और मैना के नोंक झोंक के संवादों में ही पूरा

नाटक स्वरूप लेता है ।

रक्तकमल नाटक में भारत की आज़ादी के बाद का चित्रण है । जीवन की विसंगतियों को उभारते संवाद इस नाटक की विशिष्टता कहे जा सकते हैं परन्तु इस की भाषा पर यह आरोप लगाया गया है कि— "उसमें पत्रकारी और विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता है । ऐसे स्थल बहुत कम हैं जिनमें भाषा का सर्जनात्मक और रागात्मक प्रयोग हुआ हो ।[1]"

मादाकैक्टस में भाषा और संवादों का प्रयोग कथ्यानुरूप है । कहीं-कहीं संवाद बेतुके और बोरिंग भी हैं परन्तु कहीं-कहीं इनका प्रयोग कलात्मक प्रभाव उत्पन्न करता है । "प्रतीकों के माध्यम से इस नाटक में पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के प्राचीन और नवीन मूल्यों के आपसी संघर्ष को दिखाकर नये को ग्रहण करने तथा प्राचीन के प्रति आस्था न रखने वाले के सामने एक प्रश्न उठाया गया है । आधुनिक जीवन का नये के प्रति आकर्षण और पुराने के प्रति विरोध की स्थिति ने ही **मादाकैक्टस** का निर्माण किया है जिसमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की अभिव्यक्ति भी है । पूरे नाटक में संगीत से लेकर कार्यों तक, घटनाओं से पात्रों तक, **मादाकैक्टस** से मुर्गाबी चिड़िया का सहारा लिया गया है । परिस्थितियों की विसंगति को रेखांकित करने के लिए 'मादाकैक्टस' के नये संस्करण में सुधीर और अरविन्द का लम्बा वार्तालाप है जिसमें असम्बद्ध, निरर्थक वाक्य भरे पड़े हैं ।[2]" इसके विपरीत इस नाटक की भूमिका (पहले संस्करण से) में स्वयं डॉ. लाल के विचार हैं— "यह नाटक, जैसे अपने आपको मुझसे लिखा ले गया— अपनी मौलिक भाषा में, शिल्प और स्वर संगति में ।" वास्तव में संवाद एवं भाषा के स्तर पर नाटककार की रंग चेतना और सर्जनात्मक जागरुकता तथा प्रेक्षक की सांझी भूमिका सामने आई है । कहीं कहीं असंगत और बेतुके से संवादों में भी अर्थ-व्यंजना सिद्ध हुई है :

---

1. चातक गोविन्द : **आधुनिक हिन्दी नाटक : भाषिक और संवादीय संरचना**, पू. उ. पृष्ठ—149

2. रस्तोगी गिरीश : **समकालीन हिन्दी नाटककार** : पू. उ. पृष्ठ—50

सुधीर : बकवास।

मीनाक्षी : लफ्फाजी......?

सुधीर : रियली......।

मीनाक्षी : इस्केप।

सुधीर : शटअप।

—(मादाकैक्टस : पृष्ठ 60)

करफ्यू की भाषा में नाटकीय प्रवाह है। कहीं-कहीं नाट्य-शब्दों की चुस्ती तथा संवादों की प्रासंगिकता के मध्य सन्तुलन न होने से वे प्रभावहीन भी हो जाते हैं। जैसे, संवादों के मध्य बिल्कुल असम्बद्ध फिकरा इसलिए लगा देते हैं कि संवाद पैना लगे लेकिन इससे मूल अर्थ पाठक व प्रेक्षक को सम्प्रेषित नहीं हो पाता है और वह अर्थ खोजता ही रह जाता है। वास्तव में वहां कोई अर्थ भी नहीं होता। जैसे मनीषा और गौतम के वार्तालाप में 'साँप' का जिक्र। संवाद छोटे, पैने और नाटकीय हैं।

रातरानी में दाम्पत्य संबंधों को बड़े ही काव्यात्मक ढंग से अभिव्यक्ति मिली है। कुंतल और जयदेव के आन्तरिक संबंधों, मानसिक ऊहापोहों, चारित्रिक विशेषताओं और विसंगतियों को इसमें प्रयुक्त संवादों के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। इस दृष्टि से **रातरानी** की भूमिका 'आधुनिक रंगमंच' बहुत महत्त्वपूर्ण है। डॉ. लाल नाटककार, कुशल रंगकर्मी और आलोचक तथा रंग-अध्येता रह चुके हैं। उनका सम्पूर्ण रंगबोध इस नाटक के भाषायी स्तर पर उभरा है। उनका यह मत है कि काव्यात्मकता नाटक की अभिनयात्मिका वृत्ति है। प्रसिद्ध नाट्य-समीक्षक श्री नेमिचन्द्र जैन भी **रातरानी** को हिन्दी के आधुनिक नाट्य-लेखन के प्रारम्भ का सूचक मानते हैं।

इस नाटक के संवादों द्वारा जयदेव का व्यक्तित्व दोहरापन लिए हुए प्रतीत होता है और कुंतल इकहरे व्यक्तित्व वाली है। नाटक में मानसिक द्वन्द्व को संवादों के माध्यम से उभारा गया है। नाटक की नायिका कुंतल ही अपने नन्दनवन की इन्द्राणी है और वही रातरानी है। उसका यह संवाद— 'आज सारा आधुनिक समाज केवल शरीर के स्तर पर जी

रहा है। इसी का फल है आज समाज में इतना झूठ, इतना आडम्बर, अविश्वास और हृदयहीनता है'—?रातरानी—पृष्ठ 59)— जैसे हृदय को को बींध देता हैं। उसके मानस का सम्पूर्ण दुःख द्वन्द्व मार्मिक संवादों के माध्यम से व्यक्त हुआ है। इसी प्रकार निरंजन और जयदेव के चरित्र भी उन्हीं के संवादों द्वारा चित्रित हुए हैं।

लाल के पौराणिक कथानकों पर आधारित नाटकों की भाषा भी मिथकीय बोध को उभारने में सहायक हुई है। **कलंकी** नाटक में प्रयुक्त भाषा वातावरण निर्मित करने में सक्षम है। **मिस्टर अभिमन्यु** में पात्रानुरूप भाषा का प्रयोग मिलता है। **सूर्यमुख** में सरल हिन्दी और लोकगीतों का प्रयोग सार्थक लगता है। वृद्ध द्वारा गाए गीत नाट्य एवं पात्रों की मनःस्थिति से जुड़े हैं।

"परस्पर दोउ चकोर दोउ चंदा
दोउ चातक, दोउ स्वाती, दोउ घन
दोउ दामिनी अमंदा!
दोउ अरविंद, दोउ अलिलंपट
दोउ लोहा, दोउ चुम्बक ....."

—(सूर्यमुख : पृष्ठ—71)

वृद्ध द्वारा गाया गया यह लोकशैली का गीत प्रद्युम्न और वेनुरती के साथ जैसे जुड़ जाता है।

दूसरी ओर अर्जुन का यह संवाद उसके बेमानी और निष्क्रिय चरित्र की सशक्त अभिव्यक्ति बन गया है—"मैं असमर्थ हूं, महारानी! मुझसे अब यह गांडीव नहीं उठता। मैं इन सारे प्रसंगों को नहीं समझ पा रहा हूं। लगता है, इतिहास का रथ मुझे कुचलता हुआ बहुत आगे निकल गया, और मैं अब उसकी जय यात्रा की धूल भी नहीं रहा। (रुक कर) मनुष्य की मर्यादा अपने यथार्थ की स्वीकृति में ही है। द्वारिका में आकर मैंने आत्म साक्षात्कार किया। मैं इस यात्रा के प्रति कृतज्ञ हूं। युद्ध मनुष्य को जितनी विजय देता है। उतना ही वह उसे पराजित भी करता हैं। बस, मेरी यात्रा यहीं तक थी।"

—(सूर्यमुख : 108-109)

यक्षप्रश्न, नरसिंह कथा, एक सत्य हरिश्चन्द्र की भाषा एवं संवाद भी नाट्यकथ्य को व्यक्त करने में सहायक हुए हैं। **यक्षप्रश्न** की प्रश्नात्मक शैली नाट्य कथ्य को बड़ी तेजी से आगे बढ़ाती है साथ ही पूरा का पूरा युग बोध रूपायित हो गया है जैसे :—

यक्ष : धर्म क्या है ?
युधिष्ठिर : सत्य को धारण करने वाला।
यक्ष : सत्य क्या है ?
युधिष्ठिर : अपना निजी भोग।
यक्ष : भोग कौन करता है ?
युधिष्ठिर : कर्त्ता।
यक्ष : कर्त्ता कौन है ?
युधिष्ठिर : व्यक्ति।
यक्ष : व्यक्ति क्या ?
युधिष्ठिर : कर्म !

—(यक्ष-प्रश्न : पृष्ठ—75-76)

यक्ष-प्रश्न नाटक की सम्पूर्ण भाव भूमि व्यक्ति और समाज की समय-सापेक्षता है। जो अपने समय के प्रश्नों का उत्तर नहीं देते काल उन्हें नष्ट कर देता है। वास्तव में व्यक्ति ही समय का सबसे बड़ा भोक्ता होता है। हर व्यक्ति अपने वर्तमान के लिए जिम्मेदार होता है। नरनारायण राय के अनुसार— "कोई भी सहज ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति यह गंभीरता से विचार करने के लिए विवश हो उठेगा कि अपने मिथ्या अहंकारों में जीने वाला, अपने आप तक— अपने स्वार्थ तक सिकुड़ा-सिमटा उनका व्यक्तित्व काल के समक्ष कितना विवश, व्यर्थ और क्षुद्र है। उनसे बढ़ कर वह युधिष्ठिर है जो स्वयं से अधिक दूसरे (सहदेव>को प्रकृति>ब्रह्म) को महत्त्व देता है। इसलिए युधिष्ठिर की स्वयं की पिपासा तो शांत होती ही है, वे औरों की पिपासा भी शांत करते है, उन्हें नवजीवन देते हैं। यह 'कार्य' नाटक में होता है। अर्थात् युधिष्ठिर प्रश्नों से संघर्ष

करने की अपनी शक्ति के कारण काल पर विजयी होते हैं और इस प्रकार अपने सद्य: मृत चारों भाइयों को पुनर्जीवन प्रदान करते हैं। कार्य की व्याख्या-युधिष्ठिर ने की है—'अपने भीतर से बाहरआना'। यही कार्य 'यक्ष-प्रश्न' नाटक का भी है—वह भी अपने भीतर से बाहर आता है।"[1] वास्तव में इस नाटक की संवाद शैली पूरे कथ्य को उभारने में बहुत सहायक सिद्ध हुई है। ये प्रश्न-संवाद दो स्तरों पर घटित होते हैं—एक, नाटक के भीतर यक्ष और पांडवों के बीच और दूसरी ओर नाटककार और प्रेक्षकों के बीच। नि:सन्देह इस नाटक का कथ्य-शिल्प संवादों के दुहरे मानदण्ड से रूपायित हुआ है। संवाद-शैली की दृष्टि से लाल का यह नाटक विशिष्ट महत्व रखता है।

नरसिंह कथा लोकशैली का नाटक है। इसमें प्रयुक्त भाषा, संवाद, गीत-संगीत आदि लोक जीवन से लिए हैं। कहीं-कहीं भाषा व गीतों की अनगढ़ता अटपटी लगती है परन्तु नाटकीय संवेदना जगाने में सक्षम हैं। इस नाटक में हिरण्यकश्यप की प्राचीन कथा में कई ऐसे प्रसंग हैं जिनके नये संदर्भ और नवीन व्याख्याएं की जा सकतीं हैं। ऐतिहासिक घटनाओं को सुरक्षित रखते हुए मिथकों और प्रतीकों द्वारा कई घटनाओं को नवीन रंग प्रयोगों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस प्रस्तुति में भाषायी संरचना सबसे महत्वपूर्ण है। वास्तव में डॉ. लाल ने——"लगभग सभी प्राचीन सम्बन्द्ध मिथकों का उपयोग "**नरसिंह कथा**" में किया है और हर मिथक की व्याख्या भरसक अपने ढंग से करने की कोशिश की है। इसका एक स्वाभाविक परिणाम यह निकला कि "**नरसिंह कथा**" का 'हिरण्यकश्यप' न तो राक्षस है न उसे दैवी शक्तियां प्राप्त हैं, न नरसिंह का अवतार होता है, होलिका अजर है न हिरण्यकश्यप अमर। सभी सामान्य मनुष्य हैं पर कुछ चारित्रिक विशिष्टता लिए हुए। यही चारित्रिक विशिष्टता उन्हें सामान्य लोगों से पृथक करती है। नाटक का अन्तिम

1. नर नारायण राय : **नाटकार लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्य साधना :** दिल्ली : सन्नमार्ग प्रकाशन : प्र. स, 1979, पृष्ठ—13.

संवाद इस नाटक की मूल व्यंजना को अभिव्यक्ति देता है——'सुनो नरसिंह कथा। ऐसा पशु हुआ है और होता रहेगा। सावधान ऐसा वह पशु हमारे रक्त में है। वह फिर नहीं जनमें उसके लिए जन-जन को नरसिंह बनना होगा'। नाटकीय बिडम्बना के रूप में नाटककार ने नाटक के प्रारम्भ में ही यह सूचना दे दी है कि 'हिरण्यकश्यप और प्रह्लाद की लड़ाई अब तक चल रही है'। इसलिए **नरसिंह कथा** हिरण्यकश्यप के अन्त के साथ ही समाप्त नहीं हो जाती। दूसरा हिरण्यकश्यप फिर पैदा हो रहा है, हो गया होगा, या होने वाला है। उससे संघर्ष करने के लिए फिर से एक बार मनुष्य को अपने पशु से अलग होकर सही अर्थों में मनुष्य बनना होगा। स्वधर्म की पहचान करनी होगी। डॉ. लाल का नाटक तो प्रदर्शन या पारायण के पश्चात् समाप्त हो जाता है लेकिन हमारे मन के मंच पर एक वृहत्तर 'हिरण्यकश्यप—प्रह्लाद संग्राम' प्रारम्भ हो जाता है जहां एक बार गम्भीरता के साथ हम व्यक्ति-मूल्य, मानवीय मूल्य, जीवन-मूल्य पर बिचार करने के लिए विवश कर दिए जाते हैं।"[1]

एक सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में भी लोकगीतों के माध्यम से कथा-विकास किया गया। स्थान अन्यत्र पर घटी घटनाओं की जानकारी भी इसी प्रकार दी गई है। इस नाटक में, गांवों में फैले अवर्ण और सवर्ण के वर्गभेद, जातिगत भेदभाव, छुआछूत आदि को लेकर हरिश्चन्द्र की प्रसिद्ध कथा को **लौका** और **जमींदार** के माध्यम से नयी व्याख्या दी है। "देवताओं के राजा इन्द्र और मनुष्यों के राजा हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध को नाटककार डॉ. लाल ने शोषक-शोषित के एक नये जीवन-संदर्भ के रूप में देखा है और इस प्रकार पौराणिक संदर्भ की एक नयी व्याख्या प्रस्तुत की है।[2] यही कारण है कि लौका के संवादों से कहीं-कहीं नाट्य तनाव बहुत गहराया है जैसे :—

लौका : सुनो हरिश्चन्द्र का संवाद। ना मैं अमर हूं, ना ही स्वर्ग गया। जीवन-भर नरक की आग में जल कर दी अपने

1. नर नारायण राय : **नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्य-साधना :** दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन, 1979, पृष्ठ—117
2. ——वही——पृष्ठ——124

चरित्र की परीक्षा। तुम कहते हो मैं सफल हो गया सत की परीक्षा में। पर मुझे कल फिर परीक्षा देनी होगी अपने सत की और आज का परीक्षाफल कल नहीं आएगा काम। इसलिए मुझे यहीं रहना होगा कल की परीक्षा के लिए।

देवधर : तेरी जबान खींच लूंगा। भोली-भाली जनता को गुमराह करना चाहता है।

लौका : जब तक स्वर्ग में इन्द्र है हरिश्चन्द्र को यहीं पृथ्वी पर रहना होगा।

देवधर : असली हरिश्चन्द्र स्वर्ग गया।

लौका : जिस स्वर्ग में तुम्हारा इन्द्रासन है, वहां हरिश्चन्द्र का स्वर्ग नहीं है।[1]

इस नाटक में **रोहित** के रूप में भी एक नयी चिन्तनधारा दी है। "रोहित इसीलिए वह दिए गए जीवन (इसलिए दी गई मृत्यु से भी) इनकार कर देता है और परंपरागत हरिश्चन्द्र नाटक की परम्परा तोड़कर फिर से अपने जीवन से जी उठता है क्योंकि उसने अब अपने जीवन को जान लिया है अपने जीवन को अब जीतन ने भी जाना और समझा है——तभी तो वह कहता है कि——'हम सब हरिश्चन्द्र हैं तुम्हारी सत्ताधारी राजनीति में। वहां राजा इन्द्र एक था, यहां राजा इन्द्र असंख्य हैं——पुलिस, अफसर, नेता, पूंजीपति, दलाल, गुंडा——— यही है तुम्हारी राजनीति! वह अंधकार (पृष्ठ 59)। रोहित ने जिस घड़ी यह अनुभव किया कि उसके लिए उसका अनुभव ही सत्य है (पृष्ठ 38) उसी पल उसको दिया हुआ जीवन समाप्त हो गया और वह अपने जीवन से जीने लगा।"[2] इस नाटक के संवादों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे पात्र के व्यक्तित्व, परिवेश और नाट्यतनाव को बड़ी कलात्मकता से उभारते हैं। छोटे-छोटे चुस्त दुरुस्त

---

1. **एक सत्य हरिश्चन्द्र :** पृष्ठ : 76—77,
2. नर नारायण राय : **नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्य— साधना :** पू. उ. पृष्ठ—125—126

संवाद पात्रों के सूक्ष्वातम मनोभावों को बड़ी सहजता से प्रस्तुत करते हैं। पूरा का पूरा ग्रामीण परिवेश संवादों के माध्यम से व्यंजित हुआ है।

जो सामाजिक क्रान्ति इस नाटक में प्रस्तुत की गई है उसके बीज **संस्कारध्वज** और **चतुरभुज राक्षस** में मिलते हैं। **गंगामाटी** में भी यही चेतना प्रवाहित है। **एक सत्यहरिश्चन्द्र** इसी चेतना का प्रमुख विस्फोट है। संवादों की दृष्टि से ये सभी नाटक कहीं एक ही आधारभूमि पर रचे गए से लगते हैं।

गंगामाटी में व्यक्ति द्वारा स्वयं अपने जीवन की सीमाएं निश्चित् करने तथा सामाजिक मान्यताओं को ओढ़ने तथा मानव-सम्बन्धों के कटाव की विडम्बनात्मक स्थिति को उभारा गया है। असहज जीवन में विकृतियाँ, कृत्रिमता और छदम् का समावेश होता है। जीवन जीने के लिए बनाए गए सम्बन्धों को जब संकुचित अर्थ दिए जाने लगते हैं तो सामाजिक सम्बन्धों पर सीधा असर होता है। **गंगामाटी** में अपने संस्कारों से कटे तथा अहं से ग्रस्त एकाकी जीवन जीते हुए शिवानन्द तथा तन्त्र साधना में लगे और जीवन की सच्चाई से भागा उसका पुत्र देवल की मानसिक पीड़ा की सशक्त अभिव्यक्ति इस नाटक के संवाद करते हैं। शिवानन्द का दूसरा पुत्र कमल पिता के सम्पूर्ण कर्मकाण्ड का विरोध करता है। देवल की पत्नी गंगा—— हर कर्म के उत्तरदायी स्वरूप मनुष्य को जिम्मेदार मानती है। उसका यह संवाद——जो कुछ भी मेरे आसपास हो रहा है, मैं सब में भागीदार हूं।' —(पृष्ठ—17) उसके व्यक्तित्व का परिचायक है। देवल और कमल के विरोधी व्यक्तित्वों को भी उसके संबाद सशक्त अभिव्यक्ति देते हैं (**गंगामाटी** —पृष्ठ 27-28)।

इस नाटक में देश की माटी के प्रति संवेदना, धर्म और जीवन के बीच की टकराहट आदि को संवादों के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति मिली है जैसे सीता का यह कथन—— 'जिस माटी पर खड़ी हूं,——यह दोगली हो चुकी है। सोचना कुछ, करना कुछ'— (पृष्ठ—36) नाट्य-संवेदना को गहराता है। इसी प्रकार प्रसादी के शब्दों में—— 'जीवन बहुत आगे चला गया, धर्म बहुत पीछे रुक गया। जीवन बिल्कुल बदल गया। धर्म बिल्कुल नहीं

बदला। वही आज व्याधि हो गया'——(पृष्ठ—44) तथा "दान करो। दान दो। भूखा लेने के लिए दौड़ेगा। धर्म कहेगा, यह मनुष्य का धर्म नहीं। प्रवृत्ति का दमन करो। पुण्य से पूर्णता आती है। पूर्णता ही धर्म है। पर यही आत्मविरोध है, इसी ने बांटा है। इसी ने किया है खण्ड-खण्ड। यही नहीं होने देता एक"——(पृष्ठ—44-45) जैसे छोटे-छोटे पैने और तीखे संवाद इस नाटक की आत्मा के अंग बन कर आए हैं। सम्पूर्ण नाटक इसी प्रकार के संवादों से रचा गया है और मानवता और मानववाद की व्याख्या करता हुआ कलात्मकता की सृष्टि करता है। बहुत सैद्धान्तिक ढंग का है यह नाटक।

व्यक्तिगत नाटक के संवाद एवं भाषा भी उसके कथ्यानुरूप हैं। इसमें 'मैं' और 'वह' के संवाद उनके चरित्रों की स्पष्ट अभिव्यक्ति करते हैं। साथ ही पूरी शासन व्यवस्था में फैले भ्रष्टाचार को भी व्यंग्यात्मक ढंग से व्यंजित करते हैं। 'मैं' भोक्ता, शोषक, नेता, गुंडा आदि रूपों में समाज में व्याप्त है। उसका आदर्श पुरुष हैं मि. मल्होत्रा। यह अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए अपनी पत्नी तक को इन्कमटैक्स कमिश्नर के पास संगीत का कार्यक्रम देने भेजता है क्योंकि संगीत इन्कमटैक्स कमिश्नर की कमजोरी है। 'वह' उसके दोहरे व्यक्तित्व को इस संवाद से बखूबी स्पष्ट करती है——"उन लोगों के सामने तो खूबसूरत-सा मुंह बनाये रखेंगे। मुस्कुराएंगें, हंसेंगे और घर में आकर शून्य में तीर चलायेंगे—— हमारी सरकार, शासन व्यवस्था, भ्रष्टाचार, झूठ, पाखण्ड, सांस्कृतिक चेतना,—— नैतिकता— वही बड़े-बड़े शब्द।"

——**व्यक्तिगत** : पृष्ठ—13-14

'वह', 'मैं' के शोषण का शिकार नज़र आती है। उसके आदर्श हैं श्रीमान एवं श्रीमती आनन्द जो आज भी जीवन मूल्यों एवं आदर्शों से जुड़े हुए हैं। 'मैं' इन्हीं जीवन-मूल्यों से दूर हटकर उन्नति करना चाहता है। 'वह' अपने भीतर बैठी श्रीमती आनन्द एवं बाहर बैठे 'मैं' के मध्य अक्सर तनावपूर्ण स्थिति में रहती है। 'मैं' के रूखे व्यवहार के कारण 'वह' अपने भीतर कहीं खण्डित हो चुकी है। उसका यह संवाद उसकी मानसिकता का

द्योतक है ——"शादी से पहले मेरे दिल में सिर्फ एक पुरुष हुआ करता था—प्रेमी, साथी, जिसके साथ में जी सकूं, विकास करती जाऊं। लेकिन शादी हुई तो इनसे। फिर शादी के बाद मेरे दिल में उस पुरुष की जगह दो स्त्रियां आ बैठीं—— एक मैं और दूसरी श्रीमती आनन्द। वह कहती है—— 'मैं' न तो सम्पूर्ण है न स्वतन्त्र। मुझे उनकी बात समझ में नहीं आती। यह क्या करते हैं, क्यों करते हैं, कैसे करते हैं, कुछ समझ में नहीं आता।"

——— व्यक्तिगत : पृष्ठ 31

दूसरी ओर 'मैं' का चरित्र व उसकी पोलीगेमसवृत्ति भी उसके इस संवाद से बखूबी उभरती है——"मैं इन्हें कितने रूपों में देखता हूं। एक में अनेक स्त्रियां। माफ कीजियेगा, मैं एक बड़ी पर्सनल बात कर रहा हूं —— सिर्फ एक ही स्त्री से ज़िन्दगी नहीं कट सकती———क्योंकि मनुष्य प्रकृति से पोलीगेमस है—बहुस्त्रीशादी। मगर वह इधर तमाम आर्थिक और सामाजिक दबावों से मजबूर होकर मोनोगेमस —— एक पत्नी वाला बन कर रहने लगा है।——— मैं अपनी पत्नी को जो इतने विविध रूपों में देखता हूं न वह इसलिए कि मेरे पुरुष रक्त में जो पोलीगेमी के कीटाणु हैं उन्हें शांत कर सकूं और इनके साथ ज़िन्दगी जी सकूं ———।"

——— व्यक्तिगत : पृष्ठ — 50-51

व्यक्तित्व विभाजन को दर्शाने वाला यह नाटक अपनी भाषिक चेतना में बहुत सूक्ष्म हो उठा है। व्यक्तित्व के इसी विभाजन को 'वह' का यह संवाद बड़ी गहराई से अभिव्यक्ति देता है——"देख रही हूं, एक सम्पूर्ण दर्पण था, जो टूटकर असंख्य टुकड़ों में बिखर गया —— अब उसके हर टुकड़े में वही 'मैं' दिखता है और अपने-आपको सम्पूर्ण कहता है——— पर दूसरे को, मुझको, टुकड़ों में बांटकर देखता है———मैं धर्म पत्नी, वाइफ, पार्टनर, नौकर, मां, इंटेलेक्चुअल———खिलौना———वाइफ आफ ए पोलीगेमस —— एक पूरा दर्पण था —— जो टूट कर अनगिनत ———तरह-तरह के टुकड़ों में बिखर गया ———।'

व्यक्तिगत : पृष्ठ 57

यह पूरा नाटक छोटे-छोटे तराशे हुए पैने संवादों से रचा गया है। कहीं-कहीं बहुत ही प्रतीकात्मक भी। भाषा एक दम सपाट साफ सुथरी, पात्रों के व्यक्तित्व से मेल खाती। वास्तव में यह नाटक लाल की भाषिक चेतना का एक कलात्मक नमूना है।

लाल के प्रतीकात्मक नाटकों में जैसे **मादाकैक्टस, सूखासरोवर, रानी मिस्टर अभिमन्यू, अब्दुल्ला दीवाना, सूर्यमुख** आदि की भाषा एवं संवादशैली कथ्य एवं वातावरण के अनुरूप है। पात्रों के व्यक्तित्व को अभि-व्यक्ति देने में भी सहायक सिद्ध हुई है। इन प्रतीकात्मक नाटकों में **मिस्टर अभिमन्यु** और करफ्यू के संवाद बहुत पैने और भावप्रवण हैं। **मिस्टर अभिमन्यु** में महाभारत के प्रसिद्ध वीरयोद्धा अभिमन्यु के मिथक के के माध्यम से आज के व्यक्ति की जद्दोजहद को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मिली है। नाटक के आरम्भ में ही विमल का राजन के साथ एक तरफा संवाद गहरे नाट्य-तनाव की सर्जना करता है। राजन का टूटी मूर्ति को एकटक निहारना, कागज़ का फाड़ना, लौहतरंग खिलौने को तेजी से छेड़ना, फाइल को फाड़ने के संघर्ष में भीतर चले जाना और यह सब विमल के हर प्रश्न का उत्तर शब्दों से न देकर हरकतों से देना ही उसके चरित्र के द्वन्द्व को उभारता है। उस का मौन जैसे मुखर हो उठता है। इसी प्रकार पिता जी के साथ राजन का वार्तालाप भी उसके मानसिक द्वन्द्व की सार्थक अभिव्यक्ति बना है। उसका प्रत्येक संवाद देश में फैले भ्रष्टाचार, नौकर-शाही, कुर्सी और अफसरशाही की ओट में चल रहे करप्शन को सशक्त अभिव्यक्ति देता है।[1] इसी प्रकार राजन और आत्मन तथा गयादत्त के बीच के संवाद भी राजन का अपने आप से संवाद है क्योंकि आत्मन और गयादत्त भी वास्तव में राजन के अन्तरमन को व्यक्त करने के लिए प्रतीका-त्मक पात्र हैं।[2] आत्मन की हत्या और गयादत्त के साँचे में ढलकर नाटक के अंत में चलने वाला राजन और उसका यह संवाद 'देखिये, मैं आप सब का

1. **मिस्टर अभिमन्यु** : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली 1985, पृष्ठ—4 से 8 तक।
2. वही, पृष्ठ 9 से 18 तक।

हूं प्लीज !'—उसके रूपान्तरण को बखूबी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देता है।[1]

इस नाटक की विशेषता यही है कि राजन्, आत्मन, गयादत्त, केजरीवाला आदि एक ही व्यक्ति के विभिन्न रूप हैं। इनमें आपसी संवाद मिस्टर अभिमन्यु की जद्दोजहद को सार्थक अभिव्यक्ति देते हैं। गयादत्त, केजरीवाला जैसी आक्रामक शक्तियों के साथ मिलकर चलने में ही सुख-सुविधा से ज़िन्दगी जी जा सकती है। कोरे आदर्शों (आत्मन) का स्वयं ही गला घोंटना पड़ता है। महाभारत के अभिमन्यु ने समझौता या बीच का रास्ता नहीं अपनाया और वह पूरी शिद्दत से चक्रव्यूह तोड़कर बाहर निकलना चाहता था, इसलिए वह शहीद कहलाया। परन्तु, आज का आम आदमी (राजन) अभिमन्यु की भांति ही समाज, राजनीति, व्यवस्था आदि के चक्रव्यूह में फंसा लड़ रहा है परन्तु वह बाहर निकलना नहीं चाहता क्योंकि वह सुख-सुविधा का जीवन जीना चाहता है और इस सब को करने में उसे वह सब कुछ करना पड़ता है जो उसकी आत्मा स्वीकार नहीं करती। वह अपनी आत्मा (आत्मन) की मानसिक हत्या करके ही गयादत्त आदि जैसा बन सकता है। वीर अभिमन्यु और मिस्टर अभिमन्यु की लड़ाई में यही अन्तर है—इसी अंतर को लाल ने बड़ी कलात्मकता से पात्रों की परस्पर संवाद शैली द्वारा अभिव्यक्ति दी है।

करफ्यू भी प्रतीकात्मक शैली में लिखा गया नाटक है। बाहर के **करफ्यू** और मन की वर्जनाओं के बीच पात्रों के अन्तरमन की प्रतीकात्मक व्यंजना इस नाटक के संवाद करते हैं। **करफ्यू** के विषय में लेखक की निजी डायरी में लिखे गए विचार इस प्रकार हैं— "हमारे समसमायिक समाज में मनुष्य के आपसी सम्बन्ध कुछ अजीब सीमाओं के भीतर ही जन्म लेते हैं और उसी सीमा में रह कर खत्म हो जाते हैं।——पति-पत्नी, चाहे परम्परागत विवाह से, एक-दूसरे को थोड़ा-सा जानकर उसी के भीतर बल्कि उसी थोड़ी सी पहचान का करफ्यू लगा कर जीवन जीने लगते हैं।"

(**करफ्यू**: पृष्ठ—9)

1. वही, पृष्ठ—78।

शहर में लगा करफ्यू जैसे गौतम और कविता के जीवन में लगा हुआ है। गौतम का आत्म-चिन्तन और व्यक्तित्व नाटक में कई-कई स्थानों पर उसी के संवादों द्वारा व्यक्त हुआ है। गौतम मनचाही शादी के बाद भी असन्तुष्ट है। करफ्यू की रात मनीषा गौतम के घर तथा उसके जीवन में आती है। इस प्रक्रिया में गौतम के व्यक्तित्व पर लगा करफ्यू टूटता है और वह हिंस्र पशु की मानिन्द मनीषा पर टूट पड़ता है। उससे भयभीत मनीषा बाहर भागती है किन्तु बाहर भोगी गई यातनाओं, अपने कार्य, प्रश्नात्मकता, रीति-रिवाज, समाज-सभ्यता आदि के बन्धनों से विरोध करती मनीषा अचानक गौतम के साथ केवल—एक सम्बन्ध बनाकर जीना चाहती है और उसकी यही मानसिकता उसे फिर गौतम के पास ले आती है। दूसरी ओर गौतम भी स्वयं द्वारा किये गये व्यवहार से शर्मिन्दा होता है वह मनीषा द्वारा बाहर की भोगी गई वास्तविकता को जानकर कहता है—'तुम्हारा वह रूप एक 'रिएलिटी' समझ कर मुझे 'एक्सेप्ट' कर लेना चाहिए था, 'रियेलिटी' से भागना मुश्किल है (करफ्यू —पृष्ठ 81—82)। इसी प्रकार मनीषा भी जब गौतम के पास लौट आती है तो सोचती है—"जहां से भाग निकली थी कुछ समय पहले फिर वहीं स्वयं आ गई? जिस चीज ने यह कमरा छोड़ने पर मजबूर किया वही फिर यहां ले आई। सोचा था यहाँ से भागकर निकल जाऊंगी, लेकिन——बाहर भी जैसे इसी कमरे का विस्तार है। पूरा शहर जैसे यही कमरा है—झूठ, कायरता, वासना, विस्तार में जाकर, अपराध, हिंसा बलात्कार बन गए है। ———ओ देखो में लौट आई, जहां मेरा दम घुटने लगा था, वहीं खुलकर सांस ले रही हूं अब। जागो, आँखें खोलो, मेरे साथ मनमानी करो—मैं कुछ नहीं करूंगी, भागूंगी भी नहीं। भागना आसान नहीं। भागकर कोई जाएगा कहां, जब सब जगह यही कुछ है।"[1]

दूसरी ओर करफ्यू लगने के कारण गौतम की पत्नी कविता नाटककार संजय के घर आश्रय लेती है। गौतम के चरित्र के विपरीत संजय एक दम से स्पष्ट रूप से कविता को अपने पत्नी-विहीन जीवन और अकेलेपन की

1. करफ्यू : पृष्ठ—77-78.

बात कह देता है। अपने दायरे में कैद कविता संजय द्वारा अपनी पत्नी को त्यागने पर आक्षेप लगाती हैं—'जी मैं आया, पत्नी छोड़ दी, जैसे कोई भूमिका पसन्द न आए'—(करफ्यू : 81-82)। परन्तु, यहीं उसे महसूस भी होता है कि——'आज एक बार फिर मैं अपने से भाग खड़ी हुई। फिर से दुहराई वही पुरानी कायरता की कहानी। आगे बढ़कर वापस लौटना——— कब तक चलता रहेगा यह स्वार्थ का खेल ? कब तक डरती रहूंगी मैं ? कब तक चुनाव की यह गलती होती रहेगी———मैंने क्यों ऐसा किया ? क्यों बेकार ही उसे अपमानित किया ? कसूर मेरा था, बंधन मैं तोड़ना चाहती थी और जब उसने सहायता की, काम को सहज बनाने में, मैं डर गई, कांप गई। मेरी गलती की सजा उसे क्यों मिले। (करफ्यू : पृष्ठ—85) वह संजय के अहं को तोड़ती भी है और उसे एक सार्थक पुरुष के रूप में स्वीकार भी करती है—— "हां, एक पुरुष। उसके सब अर्थों में। पुरुष जिसके बिना स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं, पुरुष जिस की चाह हर स्त्री अपनी आत्मा में पालती है, पुरुष जिसकी गोद ही स्त्री की मुक्ति है——" (पृष्ठ 89) अपने आप को वह संजय को समर्पित कर समाज-सभ्यता, दाम्पत्य-सम्बन्धों आदि को त्याग कर जबरदस्ती अपने ऊपर नैतिकताओं की वर्जनाओं के लगे करफ्यू को तोड़ डालती है।

इस पूरे नाटक में कविता और गौतम अपनी नियमितता की सीमाओं को तोड़ते हैं। गौतम न तो उसके जूड़े में लगे फूल के विषय में पूछता है और कविता भी घर में पड़ी हेयरपिन को देखकर चुप रहती है। गौतम और कविता दोनों ही अपने झूठ को स्वीकारते हैं। अपने भीतर के झूठ के करफ्यू को तोड़कर ही सहज जीवन जिया जा सकता है—के विचार को गौतम और कविता संजय और मनीषा के संवादों द्वारा व्यक्त किया गया है। सारा नाटक, इसी प्रकार के संवादों से रूप लेता चला गया है।

राजनैतिक परिवेश और भ्रष्ट राजनीति से जुड़ा लाल का नाटक **पंचपुरुष**[1] भारतीय पंचायत-चुनाव व्यवस्था पर आधरित है। स्वतन्त्रता से

1. **पंचपुरुष** : लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978 प्रथम संस्करण।

पूर्व भी भारतीय जनमानस गुलाम था और बाद में भी वह गुलाम ही बना रहा। वह मानसिक रूप से जड़ एवं निष्क्रिय ही बना रहा। अर्थात् स्वतन्त्र होकर भी अपने ही लोगों के हाथों गुलाम बनते रहे।

इस नाटक में जगमग, पंचम, कन्हाई, आदि पात्र बाबा से प्रश्न करते हैं और जवाब के रूप में पुराने जमींदार की कथा को दोहराया जाता है। भारत के गांव अंग्रेजी शासन पद्धति के अधीन ठाकुरों से शासित थे। ये ठाकुर और जमींदार वहां राजा के रूप में सत्ताशील बन गए। अंग्रेजों के प्रति अपनी वफादारी निभाते हुए अंग्रेज बहादुर को संदेश भेजते हैं——ये प्रजा हैं, इन्हें कोई राजा चाहिए। आपकी मेहरबानी से मैं यहां राजा बन कर पहुंच गया। अब इस पूरे इलाके को अपनी ताकत और तरकीब से सम्भाल लूंगा। ये आलसी सन्तोषी, अन्धविश्वासी हैं, इन्हें किसी काम में जीतकर हांकने वाला चाहिए"—(पंचपुरुष : पृष्ठ—14)।

निरीह जनता को डराने और उनका शोषण करने के हेतु गांव में मन्दिर बनाया गया। धर्मशील प्रजा को हर आपदा से ठाकुर बचाता और अप्रत्यक्ष रूप से उनका शोषण करता। अंग्रेजों को दौरों और चापलूसी हेतु जनता से दुगुनी मालगुजारी, आतंक, शोषण अत्याचार के बल पर वसूली जाती। अंग्रेज भी अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए फूट डालने की नीति बरतते। अर्थात् ठाकुर ही प्रजा का सर्वेसर्वा था। वह उनका ध्यान अपनी ओर ही केन्द्रित रखने के लिए— "आज रामलीला। कल भरत मिलाप। परसों कृष्णलीला"—(पंचपुरुष : पृष्ठ 43) का आयोजन करता। उत्तमा बाबा ही ऐसे समय में विरोधी शक्ति के रूप में उभरता है जिसे जनसमर्थन प्राप्त था। ठाकुर की निरंकुशता और अत्याचारी व्यक्तित्व को इस नाटक के संवाद शक्त अभिव्यक्ति देते हैं। उसकी नज़र में जनता ——"मनुष्य नहीं, प्रजा है। प्रजा माने भेड़, इन्हें सिर्फ एक हांकने वाला चाहिए। इससे अधिक इन्हें कुछ नहीं चाहिए।———भेड़ बने रहने में ही इनका कल्याण है और इन्हें हांकते रहने में ही है हमारी विजय" ——(पंच. पुरुष। पृष्ठ—54)। परिस्थितियों के बीच भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन शुरू हुआ। गांधीवादी अहिंसा की धारा का प्रभाव

बाबा जैसी रचनात्मक शक्तियों पर भी पड़ा। ठाकुर ने इस जन-शक्ति को दबाने के लिए हिंसा, शक्ति प्रयोग का डर भी दिखाया। उसका यह संवाद—— ''मेरे पास न बंदूकों की कमी है न गोलियों की। बस, खबर भेजते ही अंग्रेज कलक्टर, पुलिस कप्तान की सारी ताकत यहां पहुंचेगी और इशारा देते ही यह सारा गांव खाक में मिला दिया जायेगा'' —— (**पंच-पुरुष** :—64) उसकी हिंसात्मक और शोषक वृत्ति का परिचायक है। अंग्रेजों की फूट की नीति से देश विभाजन हुआ। इस स्वतंत्रता-संघर्ष में श्रीपत, शेखमौला, दामोदर सिंह, जैसे देशभक्त शहीद हो गए तथा जन-संघर्ष का नेता उत्तमा बाबा कत्ल, डाके आदि के झूठे मुकद्दमों में कैद हो गया। ठाकुर गांव का मंदिर लूट शहर में जा बसा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अराजकता और निरंकुशताओं का बोलबाला बढ़ा और यह सत्य उभरा कि—— 'एक लूटकर चला गया, और अपने पीछे लुटेरों की एक जमात पैदा कर गया (**पंचपुरुष** : पृष्ठ—11)। भ्रष्ट राजनीति आकाश बेल की तरह शहर से गांव तक फैल गई। ऐसे में ग्राम पंचायत का चुनाव एक व्यंग्यात्मक स्थिति बन गया। पंचों का चुनाव अब 'चोर-डाकू-बेईमान का' का चुनाव हो गया और 'बाकुल सिंह बंदूक और लाठी की ताकत से जितना वोट चाहे उतना गिरा सकता था'—— (**पंच-पुरुष** : पृष्ठ——9)। पूरे नाटक में इसी प्रकार ग्रामीण परिवेश में फैली संकीर्ण साम्प्रदायिकता को संवादों के माध्यम से सार्थक अभिव्यक्ति दी गई है। **पंचपुरुष** वास्तव में ग्राम पंचायत चुनाव के नाम पर गांवों तक पहुँची राजनीति के भ्रष्टाचार का खुला दस्तावेज है।

बलराम की तीर्थ यात्रा नाटक में बलराम के प्रतीकात्मक मिथक द्वारा आज के मानव के आहत अहम्, अनास्था और पलायन को वाणी दी है। करणम् का चरित्र बलराम के अन्तरमन की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। 'महाभारत' की लड़ाई में श्रीकृष्ण को अकेला छोड़कर तीर्थयात्रा पर निकले बलराम अपने अहकार और भ्रम में डूबे रोमहर्षण की हत्या तो कर देते हैं परन्तु रैवतक जाकर भोगविलास में रहने पर भी पश्चाताप की आग में निरन्तर जलते रहते हैं। करणम् बलराम के अहंकार का प्रतिरूप है। यह

सदैव इनके साथ रहता है कभी अलग नहीं होता। साथ ही यह अपने संवादों से उनके चरित्र को खोलता भी है। वह बलराम के हर पक्ष से परिचित है उसका यह संवाद बलराम के अन्तर्द्वन्द्व को कलात्मक अभिव्यक्ति देता है—"महाराज बलराम जी चाहते थे कि कौरव-पाण्डव के बीच महाभारत की लड़ाई न हो। वह दोनों को चाहते हैं—— यही इनकी दिक्कत है। इसलिए इन्होंने देखा कि दोनों —— जब कोई दो परस्पर विरोधियों को समान रूप से चाहे तो क्या होगा ? क्रिया होगी, कर्म नहीं, क्रिया। जब जब क्रिया होगी तो प्रतिक्रिया होगी। मारधाड़ होगी और पश्चाताप भी होगा। मारना भी भागना भी" **बलराम की तीर्थ यात्रा** : पृष्ठ—32-33।

इसी प्रकार की संवाद योजना द्वारा बलराम के प्रबल अहंकार और उनके द्वन्द्व को व्यंजित किया गया है। तीर्थयात्रा द्वारा शरीर शुद्धि तो हो जाती है परन्तु मन के अहंकार के होते हुए मन की शान्ति और शुद्धि नहीं होती। बलराम शब्द की भी नवीन व्याख्या अर्थात् जब तक 'बल' है 'राम' नहीं तब तक कुछ नहीं हो सकता। करणम् के रूप में बलराम का आत्म रूप स्वीकारता है—'कुछ नहीं कर सकते। दूसरे के बल पर बलराम बने हैं। देखो—— अकेले क्या हो ? कृष्ण के बिना ? जिसको पकड़ना असंभव है, उसे पकड़ने चले, उसको छोड़, जिसे छोड़ पाना असम्भव है' —— (**बलराम की तीर्थ यात्रा** : पृष्ठ—83)। रमेश गौतम के शब्दों में—'इस प्रकार यह पूरा नाटक मनुष्य की अन्तःवृत्तियों के द्वन्द्व—विकास की कहानी है। व्यक्ति का अहंकार जीवन के समस्त रसों को सुखा देता है और अहंकार के समर्पण द्वारा 'आत्मा अखिलात्मा' में अपने स्वरूप का साक्षात्कार कर विकास में पूर्णता प्राप्त करती है। यही है 'बलराम की तीर्थयात्रा' का गहरा और सनातन सन्दर्भ जो पुराण मिथक में लौटकर कहा गया है।'[1]

इस पूरे नाटक की भाषाई संरचना में कलात्मकता का निर्वाह हुआ है। पात्रानुरूप भाषा और संवादों द्वारा बलराम के अन्तर्द्वन्द्व को सशक्त अभि-

1. रमेश गौतम : **मिथक और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक** : पृष्ठ—25

व्यक्ति मिली है। यह नाटक बलराम की ऐतिहासिक तीर्थयात्रा को नये संदर्भ और व्याख्या के साथ प्रस्तुत करता है।

मन्नू[1] में **मिस्टर अभिमन्यु** नाटक के समान ही राजनीतिक और सामाजिक कुचक्रों और जटिलताओं के समक्ष व्यक्ति की पराजय को अभिव्यक्ति दी गई है। भारत की आजादी वास्तव में 'ट्राँसफर ऑफ पावर' है 'ट्रांसफर आफ फ्रीडम नहीं। भ्रष्ट राजनेता और पूंजीपति चुनावों और विधायकों पर पैसा लगाते हैं और विधायकों की नियुक्ति के बाद पैसा वसूलते हैं, कानून, न्याय आदि सभी को इशारों पर नचाते हैं। किशोर जैसा ईमानदार व्यक्ति इन सारे कुचक्रों में बुरी तरह पिसता है। अन्तत: अपनी विवशताओं के कारण हर संघर्ष में विजयी होता किशोर आत्म-समर्पण करता है और बदले में कमिश्नर बन कर उनके द्वारा दिए गए सिंहासन को स्वीकार करता है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जिस भारतीय परिवेश का निर्माण हुआ वह 'समाजवाद' के नारे तले 'पूंजीवाद' को पल्लवित करता है। इस नाटक में कालीप्रसाद का यह संवाद—"सामन्ती समाज है हमारा, इस पर विलायत वालों ने लाद दिया अंग्रेजी, बूरोक्रेसी, रंगरेज़ी डीमोक्रेसी" (**मन्नू** : पृष्ठ—8) देश के पूरे परिवेश को अभिव्यक्ति देता है। इस पात्र का और किशोर का चरित्र इस संवाद में बखूबी उभरता है—— "आप में हिम्मत है, मैंने चीफ मिनिस्टर से आपकी तारीफ की —— बिल्कुल ठीक, इन पूंजीपतियों को तो ——। अच्छा किया और करें मिलावट, काला बाज़ारी, और करें ब्लैकमेल, बेईमानी, टैक्स चोरी और खरीदें एम. एल. ए., एम. पी., मिनिस्टर चीफ ——। परन्तु सर, हजूर, एक बार मोहनदास को माफ कर दीजिए——ओनली वन्स मोर, सर' ——(**मन्नू** : पृष्ठ—12)। यह संवाद जहां किशोर जैसे ईमानदार व्यक्ति के कार्यों की व्याख्या है तो दूसरी ओर कालीप्रसाद के दुहरेपन को भी व्यक्त करता है जो मुंह पर तो पूंजीपतियों का विरोध करते हुए भी वह भीतर से उन्हीं के साथ है।

---

1. **मन्नू** : पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 1985 प्र. सं.

मन्नू का ही पात्र 'एक' का यह संवाद भी बड़ा सशक्त है——'सारे क्राईम्स की बुनियाद में गैम्बलिंग है ——— यह क्यों नहीं सोचा कि जुआ की बुनियाद में क्या है ? जो हारा है, वह हार कबूल करना नहीं चाहता —— हा, हा, हा। तुम्हारा क्या ख्याल है, आजकल एक एम. एल. ए. के इलेक्शन में कितना खर्च होता है——एक लाख, दो लाख, चलो मान लेते हैं दो लाख —— ये दो लाख कौन लगाता है, और किस पर लगाता है ? जो लगाता है वही दरअसल जुआ खेलता है। जिस उम्मीद पर लगाता है, उसकी सारी नब्ज अपने हाथ में होती है——इसलिए उम्मीदवार का मोहरा वही बनाया जाता जो निहायत बुजदिल, बिकाऊ और कौड़ी की तरह——मेरी कौड़ी जीत गई। मेरी कौड़ी एम. एल. हो गयी' —— (**मन्नू** : पृष्ठ—36-37)। जुए में लगाए पैसे की वसूली भी होती है—— कुल ढाई लाख की वसूली पांच लाख लगाया चुनाव में अब वसूली पांच लाख की। पूंजीपति अपना पैसा वसूलता है और पांच साल में यहां एक जुआखाना, यहां गुप्त चकला——यहां——शराब की दुकान खोलकर—(**मन्नू** : पृष्ठ 37)। इस प्रकार पूरे नाटक में भारतीय समाज में फैले भ्रष्टाचार और राजनीतिक दलदल की तस्वीर है। इस पूरी तस्वीर को इस नाटक के संवादों द्वारा उभारने का प्रयास किया गया है। परन्तु **मिस्टर अभिमन्यु** नाटक इसकी तुलना में अर्थात् कथ्य संवाद एवं चरित्र योजना आदि में इससे अधिक सार्थक और सफल कहा जा सकता है।

राम की लड़ाई नाटक में रामकथा से जुड़े 'धनुषयज्ञ' प्रसंग को आधुनिक संदर्भों से जोड़ा गया है, जिसमें यह संघर्ष अतीत के राम का न रहकर आधुनिक मानव का बन जाता है। जिसे समकालीन भारतीय परिवेश में धर्म, जाति, सम्प्रदायों के नाम पर खण्डित समाज रूपी धनुष पर प्रत्यंचा कसनी है और जानकी —— भारत मां —— को मुक्ति दिलानी है।

'धनुषयज्ञ' प्रसंग को एक रूपक के रूप में इस नाटक में लिया गया है। इस रूपक का यह संवाद इस प्रकार से दर्शाता है——''यह पूरा जगत धनुष

यज्ञ लीला है। जीवन और समाज धनुष है—— जो इसे उठाकर प्रत्यंचा कस दे, वही पुरुष है। यह धनुष शिव का है। सागर-मंथन से जब विष निकला तो चारों ओर हाहाकार मच गया। सबकी इच्छा अमृत पीने की, विष कौन पिये ? जिस शिव ने पिया उस विष को, उसी का पिनाक है यह। जो अपने समय सागर-मंथन का विष पीने वाला होगा, वही उठायेगा इस धनुष को।"—— (राम की लड़ाई : पृष्ठ-37)। इस समाज रूपी धनुष को हर व्यक्ति ने अपने निजी स्वार्थों से घिर कर तोड़ा है। इसलिए इस खण्डित-बिखरे समाज को एकत्रित कर, निर्माण करने की क्षमता रखने वाला ही, मुक्ति दाता है। और, इस परिवेश में जूझते राम-गुलाम नामक पात्र का संघर्ष ही वर्तमान की लड़ाई बन जाती है।

विदूषक के रूप में 'मसखरा' नामक पात्र नाटक के अन्य पात्रों का परिचय देता है —— "साहू जी बने हैं वाणासुर, चीलरसिंह बने हैं मगध-नरेश, नेताई बने हैं रावण। एक राजनेता, एक पुराना जमींदार, एक साहूकार इन तीनों ने मिल कर की तबाही है। इस पूरे नाटक में आजादी के लिए संघर्ष और आजादी के बाद देश में फैली अराजकता भ्रष्टाचारी व्यवस्था में स्वतन्त्र होकर भी गुलामी की अवस्था में जी रहे हैं रामगुलाम जैसे आम आदमी। ग्राम पंचायत के नाम पर ग्रामीण जीवन में उतरी भ्रष्ट राजनीति में ग्राम पंचायत नियन्त्रण कर्त्ता, जमींदार, बनिया, नेता आदि ने विद्वेष और अलगाववादी प्रवृतियों को जन्म दिया है और उन्हें फैलाया है। रामगुलाम और ब्राह्मण कन्या विमला का मेलजोल भी रावण बने नेताई को पसन्द नहीं। गपोले की मांग है कि वोट मिलने पर ही वे परसु राम की भूमिका करेंगे। रावण बना नेताई हमेशा चन्दे की फिक्र तो करता ही है रामगुलाम जो नीची जाति का है — कैसे राम की भूमिका कर सकता है ? —— यह भी उन्हें पसन्द नहीं। इन्हीं सारी समस्याओं और आपसी संघर्ष को इस नाटक में विभिन्न पात्रों द्वारा अभिव्यक्ति दी गई है। इस दृष्टि से इस नाटक की भाषा जहां ग्रामीण परिवेश को उजागर करने में समर्थ हुई है वहीं पात्रानुरूपता भी उसकी विशेषता है। संवादों का जाल निरन्तर संघर्ष और नाट्य-तनाव की

सर्जना करता है।

लाल के अन्य नाटकों में **कथा विसर्जन, गुरु** तथा कई लघु नाटक भी हैं जिनमें सामान्य भाषा और संवादों का प्रयोग मिलता है। जहां तक लाल के नाटकों में प्रयुक्त भषिक चेतना का प्रश्न है वह विवादास्पद है। नाटककार लाल ने अपने नाटकों में जीवन के कई स्तरों से नाट्यकथ्य लिए है और उनमें प्रयुक्त भाषा भी कथ्य, पात्र एवं वातावरण अनुरूप प्रयुक्त हुई है। यही कारण है कि लाल के नाटकों में भाषिक चेतना का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न है। लोकभाषा के प्रयोग में नाटककार की सिद्ध हस्त लेखनी ने सर्वाधिक सफलता प्राप्त की है। **अंधाकुआं, सूर्यमुख, नरसिंह कथा, एक सत्यहरिश्चन्द्र, राम की लड़ाई, बलराम की तीर्थ यात्रा** आदि कई नाटकों में लोकभाषा का प्रयोग कथ्य एवं पात्रों की संवेदना से जुड़कर हुआ। **अंधाकुआं** का सम्पूर्ण ग्रामीण परिवेश व पात्रों की मानसिकता को व्यक्त करने में इस नाटक की भाषा और संवाद बहुत सहायक हुए हैं। इसी प्रकार **सूर्यमुख** में लोकगीतों का प्रयोग और कहीं-2 लोक भाषा का प्रयोग नाट्यतनाव को गहराने और तोड़ने में समान रूप से सफल रहा है।

नरसिंह कथा, एक सत्य हरिश्चन्द्र और राम की लड़ाई में भी लोक भाषा के प्रयोग से ग्रामीण परिवेश, पात्रों की मानसिकता को सशक्त अभिव्यक्ति मिल सकी है। **एक सत्य हरिश्चन्द्र** का 'लौका' तो जैसे अपने संवादों के कारण ही एक सशक्त पात्र बन सका है।

वास्तव में नाटककार ने अपने नाटकों में भाषा की दृष्टि से जो प्रयोग किए हैं उनमें कहीं कहीं बहुत गहराई और सूक्ष्मता भी आई है जैसे **दर्पन** की 'पूर्बी' और 'दर्पन' दोनों के चरित्रों की अन्तः और बाह्य अभिव्यक्ति, उनका मानसिक द्वन्द्व, व्यक्तित्व आदि को इस नाटक में प्रयुक्त भाषा और संवाद बड़ी कलात्मकता और सफलता से प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार **मिस्टर अभिमन्यु** में राजन, आत्मन, गयादत्त आदि पात्रों का एक साथ अलख-अलग स्तरों पर एक ही व्यक्ति के विभिन्न रूपों का चित्रण पात्रानुरूप भाषा एवं संवादों द्वारा ही हो सका है।

कलंकी, सूर्यमुख, गंगामाटी, कथाविसर्जन आदि नाटकों में भी उपयुक्त

वातावरण की सर्जना करने में इन नाटकों की भाषा बहुत सहायक हुई है। एब्सर्डशैली की भाषा का प्रयोग भी लाल ने अपने नाटकों में कहीं-कहीं किया है। **अब्दुल्ला दीवाना** में प्रयुक्त भाषा लाल की भाषिक चेतना का एक अनुपम उदाहरण कहा जा सकता है। प्रयोगों द्वारा घिसे शब्दों और आम बोल चाल की भाषा का प्रयोग भी लाल के सर्वत्र नाटकों में मिलता है। नाटककार जैसे-जैसे नाट्य रचनाएं करते गए हैं वैसे ही वैसे उनकी भाषिक चेतना में भी परिमार्जन और परिवर्धन होता गया है। विस्तार की अपेक्षा संवादों में पैनापन और हरकत तथा सार्थकता के प्रयोग की वृद्धि होती गई है। परन्तु, फिर भी यह कहना अपेक्षित होगा कि जो भाषिक चेतना मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा के नाट्यलेखन में मिलती है उतनी समग्रता में लाल के नाटकों में नहीं मिलती। यद्यपि लाल ने विपुल मात्रा में नाटक लिखे हैं परन्तु उनका भाषा संस्कार, भाषा पर पकड़ और भाषायी चेतना में पूरी तरह कलात्मकता नहीं आ सकी है। लाल के नाटकों में संवादों का फैलाव और विस्तार अधिक है वे बौद्धिक अधिक हैं। सूक्ष्मता और कलात्मकता पूरी तरह नहीं उभर सकी है। फिर भी लाल के नाटक अपने युग के पथ–प्रदर्शक, सामयिक समस्याओं के वाहक बन सके हैं। अभिनेयता की दृष्टि से भी लाल का हर नाटक सफल रहा है। वास्तव में हिन्दी नाटक-जगत में लाल के नाटकों के महत्वपूर्ण योगदान और उनकी प्रयोगशीलता से इंकार भी नहीं किया जा सकता।

समकालीन हिन्दी नाटककारों में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का नाम अपनी एक विशिष्ट पहचान लिए है। मोहन राकेश ने अपने नाटकों के द्वारा नाट्य-शब्द और भाषा का जो रूप प्रस्तुत किया है उसकी तुलना में लाल के नाटक यद्यपि पूरी तरह नहीं उतरते परन्तु उनकी प्रयोगशीलता में किसी को सन्देह नहीं है। वे अपने नाटकों में समय और प्रयोगों के प्रति निरन्तर सचेत रहे हैं। समकालीन प्रश्नों को प्रतीकात्मक और रोचक शैली में प्रस्तुत करना लाल की विशिष्ट नाट्यवृत्ति रही है। बड़े नाटकों में यह वृत्ति यद्यपि पूर्णतया कलात्मक नहीं हो सकी है। परन्तु उनके लघु नाटकों विशेषकर **हाथी घोड़ा चूहा** एक नवीन नाट्य प्रयोग है। गिरीश

रस्तोगी के अनुसार इसका मूल सौन्दर्य उस चेतना में है जो सारे दर्शक वर्ग को निरन्तर नाटक में शरीक किये रहती है। क्रिया-प्रतिक्रया बराबर साथ चलती है और रंगमंच या अभिनेता दर्शक से भिन्न कुछ विशिष्ट तत्व नहीं लगता।

काफी हाउस में इंतजार एब्सर्ड शैली में लिखा गया है। इसके पात्र जीवन की विडम्बनाओं और विसंगतियों को बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित करते हैं। इसलिए इतना तो स्पष्ट है कि लाल के नाटक कोई बहुत बड़ा क्रांतिकारी मोड़ लाने की सर्जनात्मक चेतना से युक्त भले ही न हों लेकिन उनके नाटकों में अलग-अलग वैशिष्ट्य, हिन्दी नाटक को विविध विषय आधुनिकता, विभिन्न शिल्पगत प्रयोग देने के तत्व विद्यमान हैं।[1]

जहां तक लाल के नाटकों में कथ्य चयन की दृष्टि का प्रश्न है—वे अपने समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं। व्यक्तिगत, यक्ष-प्रश्न, मिस्टर अभिमन्यु, अब्दुल्ला दीवाना, एक सत्य हरिश्चन्द्र, नरसिंह कथा आदि अपने कथ्य प्रस्तुति, आन्तरिक संयोजना, रंगचेतना का पूरी तरह निर्वाह करते हैं। लाल के नाटक हिन्दी नाट्य एवं रंग परम्परा को एक नया दौर देने में समर्थ हुए हैं। उन्होंने सर्वथा नवीन और अछूते विषयों को नाटक की विषय-वस्तु बना कर मौलिकता प्रदान की है। उनका निर्देशक और रंगकर्मी व्यक्तित्व रंगमंच के विविध पक्षों का ज्ञान करवाने में सक्षम रहा है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी लाल ने अपने नाटकों में विविधता का परिचय दिया है। आधुनिक मानव के जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं को उनके चरित्र भली प्रकार अभिव्यक्ति देते हैं। मानव मात्र का चित्रण उनके चरित्रों का उद्देश्य रहा है। यही कारण है कि उन्होंने कहीं मिथकीय पात्र लिए हैं तो वहीं आधुनिक जीवन की विसंगतियों को जी रहे पात्रों का मनोविज्ञान प्रस्तुत किया है। कहीं विगत को आगत से जोड़ कर पुराने प्रतीकों को नई दृष्टि दी है। ये सभी पात्र

1. **समकालीन हिन्दी नाटक :** पू. उ. पृ. 57

मनुष्य को और समाज को बड़े ही रचनात्मक ढंग से आस्थावान और विश्वसनीय दृष्टि प्रदान करते हैं।

रंग-शिल्प की दृष्टि से भी लाल के नाटक एक नए रंग-अध्याय की सर्जना करते हैं। उनके नाटकों में भूमिकाएं, निर्देशकीय टिप्पणियां, रंग-संकेत, रंग-प्रयोग इतने विशद और विस्तार से दिए गए हैं जो किसी भी निर्देशक को अपनी ओर से कुछ भी कहने की कमी नहीं छोड़ते। रंग-सम्भावनाओं से युक्त लाल का प्रत्येक नाटक अभिनेयता की कसौटी पर खरा उतरा है। निर्देशक अपनी कल्पना से उनके नाटकों की पुनर्रचना कर सकते हैं। उन्होंने हिन्दी रंगमंच को एक नवीन दृष्टि, शैली-शिल्प और नाट्य एवं रंग-युक्तियां तथा रंग-आन्दोलन दिया है। एक पूरी समृद्ध और कलात्मक परम्परा के सूत्रधार हैं लाल के नाटक। हिन्दी नाट्य-जगत को लाल के नाटकों ने विशिष्ट योगदान दिया है। समकालीन संवेदना से जुड़े उनके नाटक कहीं-कहीं निरे बौद्धिक प्रयोग भी लगते हैं परन्तु आम बोलचाल की भाषा में लिखे गये ये नाटक अपने कथ्य एवं चरित्रगत प्रयोगों से मानव-मन की सुन्दर व्याख्या करते हैं। इनमें व्यंजना का अद्भुत सौंदर्य है। एक जागरूक नाटककार के रूप में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का नाम प्रयोगशीलता के सन्दर्भ में हमेशा अविस्मरणीय रहेगा। एक प्रयोगशील नाटककार के रूप में वे हमेशा प्रतिष्ठित रहेंगे।

—0—

लक्ष्मीनारायण लाल का नाटक-साहित्य

1. अब्दुल्ला दीवाना—दिल्ली, लिपि प्रकाशन, 1984
2. अरुण कमल एक—नयी दिल्ली, पीताम्बर पब्लिशिंग कं. 1985
3. अंधा कुआं—इलाहाबाद, भारती भण्डार, 1955
4. एक सत्य हरिश्चन्द्र—दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स, 1976
5. करफ्यू—दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स, 1972
6. कथा विसर्जन—दिल्ली किताबघर.
7. कलंकी—नयी दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1969
8. खेल नहीं नाटक—नयी दिल्ली, सरस्वती विहार, शदयानन्द मार्ग, दरियागंज, 1978
9. गंगामाटी—नयी दिल्ली, पीताम्बर बुक डिपो, 1977
10. गुरु—आगरा, शिप्रा प्रकाशन, 1975
11. चतुरभुज राक्षस—अजमेर, मिश्रा ब्रदर्स, 1976
12. जादू की छड़ी—नयी दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1975
13. ताजमहल के आंसू—इलाहाबाद, गर्गब्रदर्स, कटरा।
14. तीन आंखों वाली मछली—कटरा, इलाहाबाद, रामनारायण लाल बेनी प्रसाद।
15. तोता-मैना—(पहला नाम) सगुन पंछी (बाद का नाम)—इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन 1977
16. दर्पन—नयी दिल्ली, पीताम्बर बुक डिपो, चतुर्थ संस्करण, 1972
17. दूसरा दरवाजा और अन्य लघु नाटक—दिल्ली, लिपि प्रकाशन, 1975
18. नरसिंह कथा—नयी दिल्ली, मैकमिकल कं. आफ इण्डिया लिमिटेड, प्र. सं. 1975
19. नाटक बहुरूपी—नयी दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, प्र. सं. 1964
20. नाटक बहुरंगी—नयी दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, प्र. सं, 1960
21. पर्वत के पीछे—इलाहाबाद, सेन्ट्रल बुक डिपो (अनुपलब्ध)

22. बलराम की तीर्थयात्रा—दिल्ली, पीताम्बर पब्लिशिंग कं. द्वि. सं. 1984
23. बुद्धिमान गधा—नयी दिल्ली, त्रिमूर्ति प्रकाशन, 1976
24. मन्नू—दिल्ली, पीताम्बर पब्लिशिंग कं. 1985
25. मादा कैक्टस—नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नया संस्करण 1972
26. मिस्टर अभिमन्यु—नयी दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1975
27. मेरे श्रेष्ठ रंग एकांकी—नयी दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1972
28. यक्ष प्रश्न—दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स, 1976
29. रक्तमल—दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण, 1966
30. रातरानी—नयी दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पहला संस्करण 1972
31. राम की लड़ाई—दिल्ली, अम्बर प्रकाशन, द्वि. सं. 1988
32. व्यक्तिगत—दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स, पहला संस्करण, 1976
33. सबरंग मोहभंग—नयी दिल्ली, सरस्वती विहार, 1977
34. सगुन पंछी—दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स, प्र. सं. 1977
35. सुन्दर रस—नयी दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, संशोधित संस्करण, 1971
36. सूखा सरोवर—नयी दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, 1960
37. सूर्यमुख—दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1968
38. संस्कार ध्वज—आगरा, श्रीराम मेहरा एण्ड संस 1976

—0—